प्रकाशक— श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी ।

867, अमृत कलश, किसान मार्ग

बरकत नगर, टोक रोड, जयपुर–302015

मुद्रक —मनोज प्रिन्टर्स, 769, गोदीको का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

शुभाशीर्वाद

बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि आचार्य कुन्दकुन्द देव और उनकी रचनाओ पर परम विद्वान डा कस्तूरचन्द कासलीवाल ने लिखा है यह कार्य बहुत ही सराहनीय है, भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बाद श्रुतधर आचार्यो की परम्परा व अंगधारी दिगम्बराचार्यो की परम्परा का विच्छेद हो गया। एक अ ग का ज्ञान अन्तिम लोहाचार्य को था उनके जाने के बाद अंगज्ञान भी लुप्त हो गया, अ गज्ञान का कुछ अ श धरसेनाचार्य को था उन्होने भूतबलि पुष्पदत को उसका ज्ञान मौखिक रूप से करा दिया। भूतबलि पुष्पदन्ताचार्य ने प्रथमतः उसको शास्त्र रूप मे लिपिबद्ध किया उसी षट्खडागम पर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने परिकर्म नाम की टीका लिखी। भगवान महावोर के मोक्ष जाने के 600 वर्ष बीतने के बाद कुन्दकुन्द देव हुए, दिगम्बर जैन परम्परा के एक प्रतिभाशाली आचार्य हुए आपके समय में श्वेताम्बर परम्परा का जोर बढ रहा था, आपने अपने ज्ञान के माध्यम से उस श्वेतावास परम्परा का प्रभाव कम हुआ। इसलिए आपको मगलाचरण मे प्रथम स्मरण किया जाता है। डा. कासलीवाल जी ने इन विषयो पर अच्छा प्रकाश डाला है और वर्द्धमान की परम्परा में कुन्दकुन्द का क्या योगदान था उसको खोजपूर्ण दृष्टि से लिखा है जिससे जिज्ञासु लोग अवश्य लाभान्वित होगे। डा कस्तूरचन्द जी कासलीवाल ने यह बहुत ही रचनात्मक कार्य किया है। इसी प्रकार वे आगे भी करते रहे ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

ग आ कुन्थुसागर

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी-एक परिचय

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य हिन्दी भाषा के उन अचर्चित अथवा अल्प चर्चित कवियो को प्रकाश म लाना है जिनकी रचनाये शास्त्र भडारो मे बन्द पडी है और महत्त्वपूर्ण होने पर भी अभी तक अचर्चित एव अप्रकाशित है। जैन कवियों ने हिन्दी भाषा की जो महान् सेवायें की हैं उनसे हिन्दी जगत आज भी अनजाना बना हुआ है क्योकि हिन्दी साहित्य के इतिहास मे उन्हें कोई स्थान नही मिल सका है।

अकादमी द्वारा प्रकाशित होने वाला यह 10वा पुष्प है। इसमें आचार्य कुन्दकुन्द के समग्र जीवन पर एव उनके साहित्य पर प्रकाश डाला गया है। यही नही विभिन्न विद्वानो द्वारा निबद्ध उनके ग्रन्थो पर सस्कृत हिन्दी की टीकाओ पर भी विस्तृत प्रकाश डाला है। इस प्रकार अकादमी का यह प्रथम प्रयास है जिसमे एक ही स्थान पर श्रमण सस्कृति के महान् आचार्य पर समग्री उपलब्ध कराई गई है। वर्तमान मे आचार्यश्री का द्वि-सहस्राब्दि समारोह वर्ष भी चल रहा है और हमे बडी प्रसन्नता है कि हम उनके द्वि-सहस्राब्दि वर्ष मे प्रस्तुत ग्रन्थ को प्रकाशित कर रहे है।

10वें पुष्प के पूर्व अकादमी की ओर से

1—महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एव भ० प्रतापकीर्ति 2—कविवर बूचराज एव उनके समकालीन कवि 3—महाकवि ब्रह्म जिनदास व्यक्तित्व एव कृतित्व 4—भ० रत्नकीर्ति एव कुमुदचन्द्र 5—आचार्य सोमकीर्ति एव ब्र यशोधर 6—बाई अजीतमति एव उनके समकालीन कवि 7—मुनि सभाचन्द एव उनका पद्मपुराण 8—कविवर बुचजन—व्यक्तित्व एव कृतित्व के नाम लिये जा सकते हैं। अकादमी की ओर से सन् 1987 मे मार्टी हो गई सोना पुस्तक भी प्रकाशित की गई थी। मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि अकादमी द्वारा प्रकाशित साहित्य पर कितने ही विश्वविद्यालयो मे पी. एच डी के लिए शोध कार्य हो रहा है।

10वा पुष्प के प्रकाशन मे हमे पर्याप्त विलम्ब हुआ है जिसका एक कारण हमारा खण्डेलवाल जैन समाज के वृहद् इतिहास के लेखन मे व्यस्त रहना है। लेकिन भविष्य मे अकादमी की ओर से प्रतिवर्ष कम से कम दो पुष्प प्रकाशित होकर पाठको के हाथो मे पहुच जावे ऐसा हम पूरा प्रयास करेंगे।

9वे प्रकाशन के पश्चात् हमे जिन श्रीमन्तो का सहयोग मिला है उनमे सर्व-प्रथम मै श्री सेठ अमरचन्द जी साहब पहाडिया का नाम लेना चाहूगा। श्री पहाड़िया जी जैन समाज के लोकप्रिय एव वरिष्ठ नेता है। अपने 50 वर्ष के सामाजिक जीवन मे उन्होने समाज को प्रत्येक दिशा मे सहयोग दिया है तथा समाज की गाडी को आगे बढाना है। उन्होने अकादमी का अध्यक्ष बनने की स्वीकृति प्रदान की है जिसके लिये पहाडिया साहब के हम पूर्ण आभारी हैं। तथा अकादमी परिवार के सदस्य बनने पर उनका हृदय से स्वागत करते हैं। समाज सेवी श्री धर्मचन्द जी लुहाडिया ने अकादमी के सरक्षक बनने की स्वीकृति प्रदान की है। श्री लुहाडिया जी कर्मठ युवा समाज सेवी है। अपने जन्म स्थान नरायणा के वे म्यूनिसिपल चेयरमैन रह चुके है। नरायणा के साहजी परिवार के वे सम्मानित सदस्य है। हम आपका अकादमी के सरक्षक के रूप मे हृदय से स्वागत करते है।

दूसरे नये संरक्षक सदस्य श्री चैनरूप जी बाकलीवाल है। बाकलीवाल जी अपने सामाजिक योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं। वे महासभा के कर्मठ कार्याध्यक्ष हैं तथा अपने पिता श्री भवरीलाल जी बाकलीवाल के यशस्वी पुत्र है। अकादमी कार्यो की आप सदैव प्रशसा करते रहते हैं। हम आपका अकादमी के सरक्षक के रूप मे हार्दिक स्वागत करते हैं।

अकादमी के कार्याध्यक्ष पद की स्वीकृति देने वाले श्री राजकुमार जी सेठी डीमापुर के हम आभारी है। साहित्य प्रकाशन मे आपका गहरा सम्बन्ध है तथा पुस्तको के प्रकाशन मे आप गहरी रुचि लेते हैं। आप अ. भा. दि. जैन महासभा के प्रकाशन मत्री भी है। आपने प्रस्तुत पुस्तक पर दो शब्द लिखने की कृपा की है इसके लिए हम आपके पूर्ण आभारी है। आशा है आपका भविष्य मे भी पूर्ण सहयोग मिलता रहेगा।

अकादमी के नये उपाध्यक्ष श्री गजेन्द्र कुमार जी सबलावत हैं। जिनका इम्फाल (मणिपुर) में अच्छा व्यवसाय है। वे समाज की चुपचाप रह कर सेवा करने मे विश्वास रखते है जब मै इम्फाल गया था तब उनसे अकादमी की गति-

विधियो की बात चलाई तो आपने सहर्ष उपाध्यक्ष बनने की स्वीकृति प्रदान की जिसके लिए हम उनके आभारी हैं। नये सह-सरक्षको में श्री रतनलाल जी दुलीचन्द जी विनाक्या डीमापुर है। आपके पिताजी अकादमी के उपाध्यक्ष थे। उनके निधन के पश्चात् जब मैं डीमापुर गया तथा आपसे अकादमी का सह-सरक्षक बनने का अनुरोध किया तो आपने सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हुए जो योगदान दिया उसके लिए हम पूर्ण आभार प्रकट करते हैं।

आगरा के श्री निरजनलाल जी बैनाडा युवा समाज सेवी है। आपको पुरातत्व एव साहित्य से घनिष्ठ प्रेम है तथा जैन सस्कृति के विकास के लिए आपका पूरा सहयोग मिलता रहता है। आपने अकादमी का सह-सरक्षक बनने की स्वीकृति प्रदान की इसके लिए हम आपके पूर्ण आभारी हैं।

माननीय सदस्य का वियोग—

9वे भाग मे प्रकाशित होने के पश्चात् जयपुर निवासी श्री कपूरचन्द जी भौंसा का निधन हो गया। श्री भौसा नगर के धार्मिक एव सामाजिक सेवा मे समर्पित व्यक्ति थे। अकादमी के वे सह-सरक्षक थे। उनके निधन से अकादमी को गहरी क्षति पहुची है। हम उनकी दिवगत आत्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धान्जलि अर्पित करते हैं। उनके सभी सुपुत्र धर्म एव सस्कृति के प्रति समर्पित है। आशा है अकादमी को आप सबका पूर्ववत सहयोग मिलता रहेगा।

867 अमृत कलश बरकत नगर,
किसान मार्ग, टोक रोड, जयपुर

डा कस्तूरचन्द कासलीवाल

दो शब्द

सारे देश में आचार्य द्वि-सहस्राब्दी समारोह मनाया जा रहा है। इस अवसर पर कुन्दकुन्द साहित्य का प्रकाशन, कुन्दकुन्द के जीवन दर्शन पर सेमिनारो एव सगोष्ठियो का आयोजन, जैसे आयोजन हो रहे हैं। मुझे इसकी बडी प्रसन्नता है कि परम पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज की सत्प्रेरणा से यह कार्य हो रहा है। आचार्य श्री राष्ट्रसन्त है तथा उनका विशाल व्यक्तित्व श्रमण सस्कृति के लिए वरदान स्वरूप हैं।

इस अवसर पर श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर की ओर से "आचार्य कुन्दकुन्द व्यक्तित्व एव कृतित्व पुस्तक का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण कार्य है। पुस्तक के लेखक समाज के बहुश्रुत विद्वान् डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल है जिनकी साहित्यिक सेवा सारे देश एव समाज मे प्रसिद्ध है। मेरे विचार से प्रस्तुत पुस्तक आचार्य कुन्दकुन्द पर प्रथम कृति है जिसमे उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व पर इतना खोजपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कुन्दकुन्द साहित्य एव प्रमुख रूप से उनके समयसार, प्रवचनसार जैसे ग्रन्थो का प्रकाशन तो कितने ही स्थानो से हो रहा है लेकिन उनका समग्र अध्ययन प्रथम बार लिखा गया है। हम इसके लिए डा कासलीवाल के प्रति आभारी है जिन्होने ऐसे आवश्यक एव उपयोगी कार्य का सम्पादन किया है।

डा. कासलीवाल जी ने श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जैसी विशुद्ध साहित्यिक सस्था की स्थापना करके एक ऐसा कार्य किया है जो बहुत सी सस्थायें मिलकर नही कर सकी। इसके द्वारा अब तक 9 पुष्पो का प्रकाशन साहित्यिक क्षेत्र मे नई जागृति उत्पन्न करने वाला सिद्ध हुआ है। तथा पचासो अज्ञात एव अचर्चित हिन्दी जैन कवि प्रकाश मे आये हैं। बाई अजीतमति जैसी मीरा के समान भक्त कवयित्री रामायण की शैली मे निबद्ध पदमपुराण मुनि सभाचन्द जैसे 18वी शताब्दी के कवि, धनपाल जैसे इतिहासज्ञ कवि। बुलाखीदास जैसा 18वी शताब्दी का कवि प्रथम बार हिन्दी जगत् के सामने आये है जिनको प्रकाश मे लाने का पूरा श्रेय डा कासलीवाल को है। इसी अकादमी द्वारा आचार्य कुन्दकुन्द पर प्रस्तुत टीकाओ की उपलब्धि भी एक महत्वपूर्ण खोज है जिसको पूरा श्रेय डा. कासलीवाल जी को है।

कासलीवाल जी ने जब मुझसे अकादमी का कार्याध्यक्ष बनने के लिए कहा तथा अकादमी के नवीनतम प्रकाशन "आचार्य कुन्दकुन्द

व्यक्तित्व एव कृतित्व पर दो शब्द लिखने का आग्रह किया तो उनके प्रस्ताव पर बहुत प्रसन्नता हुई। वास्तव मे श्रीमन्त एव विद्वान् दोनो समाज की कडी होते हैं और जितना दोनो मे सहयोग एव समन्वय रहेगा समाज एव साहित्य का विकास उतना ही तेजी से होगा। इसी दृष्टि मे मुझे उनके प्रस्ताव को स्वीकार करना पडा और पुस्तक के सम्बन्ध मे एवं श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के सम्बन्ध मे लिखने का मुझे प्रसन्नता हुई। डा कासलीवाल जी को मैं विगत 25–30 वर्षों से जानता हू। वर्ष मे कितने ही समारोहो मे उनसे भेंट होती रहती है। तथा उनके सामाजिक एव साहित्यिक समर्पित जीवन का हम भी सर्वत्र प्रशसा करते रहते हैं।

मुझे आचार्य कुन्दकुन्द व्यक्तित्व एव कृतित्व जैसी सर्व जन उपयोगी पुस्तक को पाठको के हाथो मे देते हुए अत्यधिक प्रसन्नता होगी। पुस्तक के पढने के पश्चात् हम कुन्दकुन्द के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। अन्त मे, मैं श्रीमन्तो एव संस्थाओ के अधिकारियो से निवेदन करना चाहता हू कि अपनी ओर से 10–10 प्रतिया खरीद कर आ कुन्दकुन्द की बहुश्रुतज्ञता का सभी को परिचय करायें।

डीमापुर

राजकुमार सेठी
कार्याध्यक्ष

सम्पादकीय

आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह के वर्ष मे मुझे "आचार्य कुन्दकुन्द-व्यक्तित्व एव कृतित्व" पुस्तक प्रस्तुत करते हुए अतीव प्रसन्नता है वैसे तो आचार्य कुन्दकुन्द का नाम ही मगल स्वरूप है। उनके विलक्षण एव चमत्कारिक जीवन पर कुछ लिख पाना सहज कार्य नही है। जैसा उनका व्यक्तित्व पावन एवं तेजोमय है वैसे उनका साहित्य भी सागर के समान गहन है जिसकी थाह पाना एक चुनौती भरा कार्य है। आचार्य अमृतचन्द्र एव आचार्य जयसेन ने भी उनके तीन ही ग्रथो पर टीकायें लिखकर विराम ले लिया और उसके पश्चात् किसी भी आचार्य, भट्टारक एव पण्डित उनके एक से अधिक ग्रन्थ पर सस्कृत टीका अथवा हिन्दी वचनिका लिखने का साहस नही जुटा सका। उनके पूरे साहित्य पर टीका लिखना, परीक्षण करना असम्भव नही तो सम्भव भी नही माना गया। लेकिन इतना अवश्य है कि विगत एक हजार वर्षो मे उनके ग्रन्थो का पठन पाठन बराबर चलता रहा है और आचार्य कुन्दकुन्द को जैन वाड्मय मे सर्वोपरि स्थान मिलता रहा। उनके नाम का प्रत्येक शुभ कार्य के पूर्व स्मरण किया जाता रहा। समयसार, प्रवचनसार, पचास्तिकाय जैसे ग्रथो का पढना, स्वाध्याय करना, उन पर प्रवचन करना विद्वता की पहिचान मानी जाती रही। जयपुर के पण्डित जयचन्द छाबडा, सदासुख कासलीवाल, बुधजन, सागानेर के जोधराज गोदीका, हेमराज गोदीका सभी पण्डित कुन्दकुन्द साहित्य के भारी विद्वान थे।

20वी शताब्दी मे एव विशेषत उत्तरार्ध मे भी समयसार का खूब प्रचार रहा आचार्य ज्ञानसागर जी, आचार्य विद्यानन्द जी, आचार्य विद्यासागर जी एव आर्यिका ज्ञानमती माताजी ने कुन्दकुन्द साहित्य पर खोजपूर्ण कार्य किया। सोनगढ के कानजी स्वामी ने भी समयसार पर खूब प्रवचन किये लेकिन उनका मुख्य प्रवचन कर्त्ताकर्म अधिकार, उपादान निमित्त, पाप पुण्य अधिकार पर ही होता रहा और अन्य विषय प्राय उपेक्षित ही बने रहे और न उनकी खोज परक दृष्टि रही।

आचार्य कुन्दकुन्द की द्विसहस्राब्दी समारोह वर्ष आचार्य विद्यानन्द जी की देन है। यह समारोह वर्ष एक वर्ष के स्थान पर दो वर्ष तक मनाया जाना भी उन्ही की सूझबूझ का परिणाम है। समारोह वर्ष में देश भर मे पचासो सगोष्ठिया आयोजित हुई। उनके अध्यात्म एव दर्शन पर विभिन्न विद्वानो के द्वारा शोधपूर्ण निबन्ध पढे गये। कुन्दकुन्द साहित्य पर कार्य करने वाले कुछ विद्वानो को सम्मानित किया गया। आकाशवाणी एव दूरदर्शन पर आ कुन्दकुन्द का जीवन वृत्त प्रस्तुत किया गया। इमसे इतना लाभ तो अवश्य हुआ कि कुन्दकुन्द का नाम सार्वजनिक रूप से लिया जाने लगा।

'आचार्य कुन्दकुन्द व्यक्तित्व एव कृतित्व पुस्तक' भी समारोह वर्ष की एक भेंट है। आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन पर छोटी बडी कितनी ही कृतिया लिखी गई लेकिन उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व एव कृतित्व पर बहुत कम कृतियाँ सामने आई हैं। प्रस्तुत कृति इस सन्दर्भ मे एक नया प्रयास है जिसमे कुन्दकुन्द पर अब तक सम्पादित कार्य का भी उल्लेख किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक मे आचार्य कुन्दकुन्द के जीवन पर विस्तृत समीक्षा की गई है उनके समय पर विद्वानो मे विशेष ऊहापोह रही है लेकिन हमारी दृष्टि मे उनका 2000वा वर्ष समारोह काल निर्णय की दिशा मे एक सही कदम है जो प्राचीन आलेखो एव पट्टावलियो से मेल खाता है। हमारी भी यही मान्यता है। उनके जीवन के सम्बन्ध मे 100 वर्ष पूर्व लिखे गये जीवन वृत्त को प्रस्तुत किया गया है और उसके कुछ विन्दुओ पर समीक्षात्मक विचार प्रस्तुत किया गया है।

आचार्य कुन्दकुन्द के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने के पश्चात् उनके कृतित्व पर विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। उनकी 23 कृतियों का परिचय एव उनका सार देने के पश्चात एक-एक ग्रथ पर लिखी गई सस्कृत एव हिन्दी टीकाओ, वचनिकाओ एव पद्यानुवादो पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थानुसार इन टीकाओ का विवरण निम्न प्रकार है।

क्रम सख्या	ग्रन्थ का नाम	सस्कृत टीका	कन्नड	हिन्दी वचनिका	हिन्दी पद्यानुवाद	योग
1—	पचास्तिकाय	2	1	2	2	'
2—	समयसार	6	–	11	7	24
3—	प्रवचनसार	5	1	2	7	15
4—	नियमसार	1	–	2	–	3
5—	अष्टपाहुड	2	–	1	–	3
6—	मूलाचार	1	–	2	–	3

इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द के 6 ग्रन्थो पर अब तक लिखी गई 55 टीकाओ का भी परिचय प्रस्तुत किया गया है। इन 55 टीकाओ मे समयसार एव प्रवचनसार पर तो कुछ ऐसी टीकायें है जिनका परिचय भी प्रस्तुत पुस्तक के माध्यम से पाठको को प्रथम बार प्राप्त होगा।

1—समयसार कलश टीका	भाषा सस्कृत	नित्यविजय
2— ,, ,,	,, ,,	भ देवेन्द्रकीर्ति
3—,, ,, टब्बा टीका	हिन्दी	दौलतराम कासलीवाल
4—,, ,, ,,	,, ,, गद्य	अज्ञात
5—प्रवचनसार	बालावबोध टीका	हेमराज
6— ,, ,,	हिन्दी पद्य	देवीदास
7— ,, ,,	,, ,,	वृन्दावन

इस प्रकार 7 सस्कृत हिन्दी टीकायें तो ऐसी है जिनका प्रथम बार परिचय दिया गया है।

प्रस्तुत कृति को शोधार्थियो एव ग्रन्थ सम्पादन करने वाले विद्वानो को उपयोगी बनाने के लिये कुन्दकुन्द के ग्रन्थो की महत्वपूर्ण एव प्राचीन पाण्डुलिपियो की भी तालिका दी गई है साथ ही मे उन शास्त्र भण्डारो के नाम जिन भण्डारो मे वे सग्रहित हैं।

शुभाशीर्वाद

मैं परम पूज्य गणधराचार्य कुन्थुसागर जी महाराज का आभारी हू जिन्होने पुस्तक लेखन के लिये अपना शुभाशीर्वाद दिया है। श्री गणधराचार्य विशाल सघ के आचार्य हैं और अपनी वीतरागता एव अगाध ज्ञान से सबको लाभान्वित करते रहते है।

मैं उन सभी विद्वानो का आभारी हू जिनका मुझे पुस्तक लेखन मे सहयोग प्राप्त हुआ है अथवा जिनकी कृतियो का मैंने प्रस्तुत पुस्तक लेखन मे उपयोग किया है। मै शास्त्र भण्डारो के व्यवस्थापको विशेषत: श्री व्रजमोहन जी जैन मत्री

श्री दि० जैन तेरहपथी बडा मन्दिर जयपुर एव श्री लाला नरेन्द्रमोहन जी डडिया व्यवस्थापक शास्त्र भण्डार मन्दिर जी ठोलियान का आभारी हू जिन्होने अपने शास्त्र भण्डारो के ग्रन्थो का उपयोग करने की स्वीकृति प्रदान की।

पुस्तक का मूल्य कम करने की दृष्टि से हमे माननीय श्री त्रिलोकचन्द जी साहब कोठारी कोटा, श्री निर्मलकुमार जी साहब सेठी एव डा (श्रीमती) सरयू वी. दोशी ने आर्थिक सहयोग देने की स्वीकृति प्रदान की है उसके लिए हम उनके पूर्ण आभारी हैं। तीनो ही महानुभावो की अकादमी पर प्रारम्भ से ही कृपा रही है। और वे इसके सरक्षक सदस्य भी हैं।

पुस्तक की नामानुक्रमणिका बनाने मे सुश्री ऊषा जैन रिसर्च स्थावर कसरावद (मध्यप्रदेश) ने जो सहयोग दिया है उसके लिए हम उनके भी आभारी हैं।

जयपुर
1-7-90

डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल

विषय-सूची

———

आचार्य कुन्दकुन्द

आचार्य कुन्दकुन्द श्रमण सस्कृति के जगमगाते नक्षत्र है। भगवान महावीर एव गौतम गणधर के पश्चात् उनका मगल स्तवन इस बात का धोतक है कि जितना सम्मान एवं श्रद्धा आचार्य परम्परा में कुन्दकुन्द के प्रति व्यक्त की जाती है उतनी अन्य किसी आचार्य को उपलब्ध नही हो सकी है। आचार्य कुन्दकुन्द को जिनवाणी की प्रतिमूर्ति माना जाता है। विगत दो हजार वर्षो से जिन आचार्यो का सबसे अधिक नामस्मरण किया गया है उनमें आचार्य कुन्दकुन्द का नाम सर्वोपरि है।

भगवान महावीर के पश्चात् तीन केवली, पांच श्रुतकेवली, दस पूर्वधारी, पाच आचार्य ग्यारह अगधारी, चार आचार्य दशांग नवाग एव अष्टांगधारी एव पाच एकागधारी श्रुतधराचार्य हुये जिन्होने आगम की अविच्छिन्न धारा को जीवित रखा। उन्होने चतुर्विध जैन सघ को अपने पारलौकिक ज्ञान से आप्लावित रखा तथा भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित श्रुतज्ञान को जीवित रखा और जिस कारण वीर निर्वाण सवत–683 तक आगम की अविच्छिन्न धारा बहती रही।

इसी बीच आचार्य परम्परा सघों में विभाजित हो गई और वह मूलसघ, यापनीय सघ, द्रविड सघ एव काष्ठासघ नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुई। आचार्य कुन्दकुन्द मूलसघ के प्रमुख एव आदि आचार्य हुये जिनका व्यक्तित्व एव कृतित्व दोनो ही अनुपमेय है।

1 कुन्दकुन्द का समयः—

आचार्य कुन्दकुन्द के समय के सम्बन्ध में सभी विद्वान एक मत नही है। इसका प्रमुख कारण आचार्यश्री द्वारा स्वय अपना कोई परिचय अथवा

समय आदि के सम्बन्ध में मौन रहना है। उन्होने केवल वोध पाहुड में निम्न गाथा में भद्रवाहु का नाम गमय गुरु के रूप में लिया है —

वारस अगवियाण चउदस पुव्वग विउलवित्थरण।
सुयणाणि भद्रवाहु गमय भयवाओ जयओ ॥62॥

उक्त गाथा के अनुसार यदि उनको प्रथम भद्रवाहु का शिष्य मान लिया जावे तो फिर उनका समय ईसा की तीसरी शताब्दी पूर्व बैठता है जो सम्भव नही लगता।

1—आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थो के प्रथम टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र का समय 1000 ए० डी० माना जाता है। उन्होने भी सयमसार, प्रवचनसार एव पचास्तिकाय की टीकाओ मे कही भी कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख नही किया। इसका अर्थ यह है कि आचार्य कुन्दकुन्द 10वी शताब्दी के पूर्व तक प्रसिद्ध आचार्य के रूप में नही माने जाने लगे थे। इसलिए एक हजार वर्ष में होने वाले किसी भी आचार्य ने आचार्य कुन्दकुन्द को अपने ग्रन्थो मे उद्धृत नही किया।

2—आचार्य कुन्दकुन्द के सम्वन्ध में सामग्री श्रवणबेलगोला के शिलालेखो मे मिलती हैं। श्री मागीलाल जैन ने अपनी लघु पुस्तक "कुन्द-कुन्द नाम व समय" में इन लेखो पर अच्छा विचार-विमर्श किया है। पाठको के अवलोकनार्थ उन्हे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है —

सबसे पहला शिलालेख चन्द्रगिरि के कन्तिले वसदि के द्वार से दक्षिण की ओर स० 55 (69) है जो सन् 1100 ए० डी० का अनुमानित हैं। इसमें है—श्रीमतो वर्द्धमानस्य वर्द्धमानस्य शासने।

श्रीकौण्डकुन्द-नामाभून्मूलसघाग्रणी गणी।

इसमे कोण्डकुन्द के नाम का स्मरण मूलसघ के सस्थापक आचार्य के रूप में किया गया है। ऐसा ही विंध्यगिरि के शिलालेख न० 90 (240) ए० डी० 1178 में वर्णन है।

बेलगोला नगर मठ के उत्तर की गौशाला में लेख न० 136 (351) सन् 1119 का है जिसमें लिखा है —

स्वस्ति श्री वर्द्धमानस्य वर्धमानस्य शासने।
श्री कौण्डकुन्द नामा भूच्चतुरङ्गुल चारणः।

जान पडता है कि बीच के दो दशक (1100-1119) में उनकी प्रसिद्धि पृथ्वी तल से चार अंगुल ऊपर चलने वाले चारण मुनि के रूप में होने लगी थी और उनका असली नाम पद्मनन्दि है यह भी बताया जाने

लगा था। इसलिये इसके बाद चन्द्रगिरि के शिलालेख नं० 43 (117) सन् 1123 तथा न० 50 (140) सन् 1146 नं ० 47 (127) सन् 1155 व नं० (42) 66 सन् 1177 में लिखा गया.—

श्रो पद्मनन्दीत्यनवद्यनामा ह्याचार्यं शब्दोत्तर-कोण्डकुन्दः।
द्वितीयमासीदभिधानमुद्यच्चारित्र सजातसुचारर्णाद्धः ॥

इन शिलालेखो में उत्कीर्ण हुग्रा कि उनका ग्रसली नाम पद्मनन्दी था, ग्राचार्य कोण्डकुन्द दूसरा नाम था ग्रौर यह भी कि उन्हे ग्रपनी तपस्या के बल से चारण ऋद्धि प्राप्त हो गई थी।

चन्द्रगिरि के ही पार्श्वनाथ बसदि के एक स्तभ पर शिलालेख न० 54 (67) जो सन् 1128 का है, मे उत्कीर्ण है कि:—

वर्ण्यः कथन्नु महिमा भरणभद्र बाहो।
म्मोहोरू मल्लमर्दनबृत्त बाहोः।
यच्छिष्यता प्रकृतेन स चन्द्रगुप्त-श्शुश्रु ष्यते स्म सुचिर वनदेवताभिः।
वन्द्यो विभुर्भु वि न कैरिह कोण्डकुन्दः।
कुन्दमभाप्रणयि कीर्ति विभूषिताश. ॥
यश्चारूचारणकराम्बुज चचरोकश्चक्रे श्रु तस्य भरते प्रतिष्ठाम् ॥

इस लेख मे बताया है कि भद्रबाहु के शिष्य चन्द्रगुप्त थे उसके बाद कोण्डकुन्द हुये जिनकी कीर्ति कुन्द-प्रभा के समान थी ग्रौर वे चारण मुनियो के हस्तकमलो के भ्रमर थे, ग्रादि।

उसी पर्वत पर कूगे ब्रह्मदेव स्तम्भ पर लेख नं० 40 (64) सन् 1163 में लिखा है कि:—

श्री भद्रस्सर्व्वतो यो हि भद्रबाहुरितिश्रु तः।
श्रु तकेवलिनाथेषु चरम परिमो मुनिः।
चन्द्रप्रकाशोज्वलसान्द्रकीर्ति श्री चन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्यः।
यस्य प्रभावाद् वनदेवताभिराराधितः स्वस्य गणो मुनीनाम्।
तस्यान्वये भूविदिते बभूव यः पद्मनदि प्रथमाभिधानः।
श्री कौण्डकुन्दादिमुनिश्वराख्य. सत्संयमादुद्गतः चारणर्द्धिः।

यह 1163 का शिलालेख 1128 के शिलालेख का ही ग्रनुकरण है।

सन् 1385 में विजयनगर में जेन मंदिर के दीप स्तम्भ पर उत्कीर्ण हुग्रा कि:—

श्री मूलसंघेऽजनि नदिसघस्तस्मिन् वलात्कारगरणोऽस्ति रम्यः।
तत्रापि सारस्वत नाम्नि गच्छे स्वच्छाशयोऽभूदिह पद्मनदि।
आचार्य कुण्ड (कुन्दा) ख्यो वक्रग्रीवो महामति.,
एलाचार्यो गृध्र-पिच्छ इति तन्नाम पञ्चधा ।।

यहां आकर उनके पाच नाम मिलने लगे, किन्तु यहा उनको चारर्णाद्धि नही कहा गया है। अत· यद्यपि 1163 के और 1385 के वीच मे लोग उनको पाच नामो से जानने लगे थे तथापि हो सकता है विजयनगर मे उनके चारण ऋद्धि होने पर कोई सन्देह रहा हो। आगे चलकर यह विवाद उठा कि ग्रन्थराज मूलाचार के रचनाकार कुन्दकुन्द न होकर वट्टकेर हैं तो फिर कुन्दकुन्द को एक नाम दे दिया गया और वट्टकेर का अर्थ प्रवर्तक, प्रधान या श्रेष्ठ लगा लिया गया।

आइये, फिर श्रवण वेलगोला के पर्वत विंध्यगिरि पर ललें। वहा शिलालेख न० 105 (254) सन् 1398 में सिद्धर बसदि मे अ कित हुआ कि —

इत्याद्यनेक सूरिष्वथ सुपदमुपेतेषु दीव्यतपस्या
शास्त्राधारेषु पुण्यादजनि सजगता कौण्डकुन्दो यतीन्द्र.।
रजोभिरस्पृष्ट तमत्व मन्तर्बाह्येऽपि सव्यन्जयितु यतीश।
रज पद भूमितल विहाय चचार मन्ये चतुरङ्गुल स ।।

उसी पर्वत पर सिद्धर बस्ती पर लेख न० 108 (258) सन् 1433 ई० में निम्न प्रकार से उत्कीर्ण हुआ —

तदीय शिष्योऽजनि चन्द्रगुप्त. समग्र शीलनतदेववृन्द।
विवेश यत्तीव्रतप प्रभावप्रभूत कीर्ति भुवनान्तराणि।
तदीयवशाकरत प्रसिद्धात् अभूतदोषा यति रत्नमाला।
बभौ यदन्तर्म्मरिण वन्मुनीन्द्रस्स कुण्डकुन्दोदित चण्डदण्ड·।

जान पडता है कि अब 15वी शती मे उन्हे कोण्डकुन्द के स्थान पर कुण्डकुन्द लिखे जाने लगा। इसके बाद कुन्दकुन्द यह नाम कब से चला यह कहना कठिन है।

676 ए० डी० में लिखे गये रविषेरण के पद्मपुराण में समन्तभद्र का तो जिक्र है मगर कुन्दकुन्द का नही। दसवी शताब्दी के माने जाने वाले और चन्द्रगिरि पर बैठकर ग्रन्थ लिखने वाले नेमिचन्द्राचार्य ने भी उनका

स्मरण नही किया। इसका यही अर्थ लगाया जा सकता है कि 10वी—11वी शताब्दी तक न उनकी प्रतिष्ठा जम पाई थी न उनके नाम का सघ ही स्थापित हुआ था।

पंचास्तिकाय की टीका के प्रारम्भ में जयसेन (1300)। ने षटप्राभृत की टीका मे श्रुतसागर (1500) ने तथा पाण्डवपुराण मे शुभचन्द्र (1551) ने कुन्दकुन्द नाम लिखा है। ब्रह्म जिनदास (1423) ने जम्बूस्वामी चरित्र में कुन्दकुन्दान्वय का जिकर किया है। इससे पहले कौण्डकुन्द या कुन्डकुन्द का नाम कुन्दकुन्द नही मिलता है। इस साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि कुन्दकुन्द यह नाम 14—15वी सदी मे प्रचलित हुआ।"

पट्टावलियो में आचार्य कुन्दकुन्द का स्पष्ट समय दिया है जो निम्न प्रकार है .—

जन्म —माघ शुक्ला 5 ईसा पूर्व 108

मुनि दीक्षा:—11 वर्ष की आयु में 33 वर्ष मुनि अवस्था में रहने के पश्चात्।

आचार्य पद —44 वर्ष की आयु में। इस पद पर वे 51 वर्ष 10 मास 15 दिन रहे।

पूरी आयु -95 वर्ष 10 मास 15 दिन। ईस्वी पूर्व 12 वर्ष मे समाधि मरण किया।

वर्तमान विद्वानों मे आचार्य विद्यानन्द जी महाराज को छोड कर शेष विद्वानो का अपना अलग-अलग मत है। केवल आचार्यश्री पट्टावलियों में दिये गये समय को सही मानते है और उसी के अनुसार देश मे आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दी समारोह का आयोजन मनाया जा रहा है।

2—लेखक का मत :—

इसमे दो मत नही हो सकते कि आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर श्रमण परम्परा के सबसे बड़े आचार्य हैं "मगलं कुन्दकुन्दाद्यो' इस पद से ही उनका गौतम गणधर के बाद का स्थान माना जाता है लेकिन यह भी सही है कि एक हजार वर्ष तक उनका व्यक्तित्व इतना सम्मान नही पा सका जितने सम्मान के वे अधिकारी थे। 10वी शताब्दी मे होने वाले अमृतचन्द्राचार्य

ने उनके तीन ग्रन्थो पर टीका करके उनके साहित्यिक गौरव को सामने लाने मे सर्वप्रथम प्रयास किया। अमृतचन्द्र के पश्चात् 11वी शताब्दी में आचार्य जयसेन हुये जिन्होने उनके तीन ग्र थो पर अमृतचन्द्राचार्य से भी सरल सस्कृत भाषा मे टीका लिखी और आचाय कुन्दकुन्द के सम्बन्ध मे कुछ महत्त्वपूर्ण प.रचय भी लिखा। जयसेनाचार्य ने पचास्तिकाय सग्रह की तात्पय वृत्ति में आचार्य कुन्दकुन्द का सीमधर स्वामी के समवसरण में जाने का उल्लेख के साथ ही उनके पद्मनन्दि आदि नामो का भी उल्लेख करके आचार्य कुन्दकुन्द के परिचय को आगे बढाया। लेकिन उनके समय का उल्लेख उन्होने भी नही किया।

10वी शताब्दी में ही होने वाले देवसेनाचार्य ने दर्शनसार में आचार्य कुन्दकन्द के विदेह क्षत्र में जाने की चर्चा की तथा यह भी लिखा कि उन्होने इस ग्र थ का सकलन पूर्वाचार्यो की गाथाओ के आधार पर किया है। इसलिए आचार्य कुन्दकृन्द 10वी शताब्दी के बहुत पहिले हो चुके थे यह इससे स्पष्ट भाषित होता है।

लेकिन आचार्य रविषेण, जिनसेन, गुणभद्र जैसे आचार्यो एव महाकवि स्वयम्भ्, पुष्पदन्त, वीर जमे महाकवियो द्वारा कुन्दकुन्द को मगल रूप मे स्मरण नही करना भी आश्चर्य की बात लगती है क्योकि जैन साहित्य मे पूर्ववर्ती कवियो के नामो का उल्लेख करने की परम्परा रही है। उन आचार्यों को आचार्य कुन्दकुन्द क नाम एव उनके महात्म्य के बारे में जानकारी नही होगी ऐसा तो नही कहा जा सकता।

लेकिन हमारे यहा जो मूलसघ की पट्टावलिया मिलती है वे समय-समय पर लिखी जाती रही है उनमे प्राय सही नाम एव तिथि रहती है। उनमें किसी की तिथि आगे पीछे लिखने की परम्परा भी नही रही है। इस प्रकार को पट्टावलियाँ कितने ही भडारो में स्वतत्र रूप से अथवा उनमें सग्रहित गुटको में मिलती हैं जिनकी प्रामाणिकता सदेह से परे होती है। इन पट्टावलियो मे आचार्य कुन्दकुन्द के समय के बारे में स्पष्ट उल्लेख मिलता है इसलिए हमे उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। उसमे आचार्य कुन्दकुन्द का समाधिमरण का समय ईस्वी 12 वर्ष पूव का दिया है और उसी तिथि के अनुसार वर्तमान मे उनका द्विसहस्राब्दि समारोह मनाया जा रहा है। इसलिए आचार्य कुन्दकु द ईसा की प्रथम शताब्दो पूर्व हुए उनका यह समय ठीक लगता है।

3 जन्म स्थान—आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म स्थान कोण्डकन्दे अथवा कोण्डकुन्दी ग्राम में हुआ था। यह ग्राम वर्तमान में आंध्रप्रदेश में है। पुण्याश्रव कथाकोश के अनुसार उनके माता पिता का नाम श्रीमती एव करमण्डु था तथा ज्ञान प्रबोध के अनुसार कु दलता और कु दश्रेष्ठी था।

4. कुन्दकुन्द का जीवन

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपना स्वय का परिचय किसी भी ग्रंथ में नही लिखा। बोध पाहुड मे उन्होने अपने गुरू का नाम भद्रबाहु लिखा है जबकि पट्टावलि के अनुसार भद्रबाहु के पश्चात् आचार्य गुप्तगुप्ति, आचार्य माघनदि एवं आचार्या जिनचन्द्र हुए और उनके पश्चात् कन्दकुन्द के आचार्य होने का नम्बर आता है। लेकिन ऐसा लगता है आचार्य भद्रबाहु के पश्चात् जो आचार्य पट्ट पर बैठे वे अधिक वर्षो तक जीवित नही रह सके और केवल 24—25 वर्षो में ही तीन मुनियो ने आचार्य पद को सुशोभित किया इसलिए कुन्दकुन्द ने भी भद्रबाहु को परम्परा से अपना गुरू मान लिया।

आचार्य के जन्म स्थान, माता-पिता एव जीवन की अन्य घटनाओ के सबंध मे हम सवत् 1913 मे लिखित प्रतिष्ठा पाठ की एक पाण्डुलिपि मे जो इतिवृत दिया है उसको अविकल रूप मे यहा दे रहे हैं। प्रस्तुत इतिवृत्त की प्रामाणिकता के सबध में हम आगे विचार करेंगे।

"संवत 770 के साल बारा नगर में श्री कुन्दकुन्दाचार्य मुनिराज भये। जिनका व्याख्यान करजे छै। कुन्द सेठ कुन्दलता सेठाणी के पांचवा स्वर्ग को देव चय करि गर्भ मे आये। तो दिन सु सेठ को नाम प्रसिद्ध हुवा। काहै तै पुष्पादिक को वर्षा का कारण सं नव महीना पीछै पुत्र का जन्म भया। ता समय मै स्वेतांवरन की आम्नाय विसेस होय रही। दिगम्बर सम्प्रदाय उठ गई। एक जिनचन्द्र मुनिराय गिरी पर्वत मे रहे। ताका दर्शन सेठजी करवो करं सो याकं पुत्र आठ वर्ष का हुवा। अर उठीने श्री आचार्य का आयु कम नजीक आया। व कुमार नित्य आवै सो पुर्वला कारणातै कुन्दकुन्द कुमार दीक्षा लेता भया। आचार्य तो देवलोक पधारे अर कुन्दकुन्द मुनिराज का मार्ग विसेस जान्या नहीं सो अपने गुरू स्थापना के निकट ही ध्यान करता भया। सौ इनका ध्यान के प्रभाव तं सिंह व्याघ्रादिक सान्त भाव कूं प्राप्त भया। श्री स्वामी के ऐसा ध्यान प्रगट भया।

तीन ज्ञान अगोचर श्रीमन्धर स्वामी पूर्व ले विदेह क्षेत्र का राजा तिन ध्यान स्वामी न सरू कर्‌या।

आदि समवसरण की रचना विधि पूर्वक चित्त रूपी महल में बनाया ताकी बीच गन्ध कुटी रच दीनी। अर बारा सभा सहित रचना बनाय सिंहसन ऊपर चार अगुल अतरीक श्री महाराजि श्री सीमन्धर स्वामी कूं विराजमान देख करि तत्काल श्री कुन्दकुन्द यतिराज नमस्कार करता भया। उसही समय में विदेह क्षेत्र में श्री भगवान मुनिराज कूं धर्मवृद्धी दीनो। तदि चक्रवर्त्यादिक महन्त पुरुषा के बडो विस्मय उत्पन्न हुवो। अबार कोई इन्द्र देव मनुष्यनि में कोउ भी आया नाहीं। अर स्वामी धर्म-वृद्धि दीनी ताका कारण कहा। तदि महापद्म चक्रधर आदि सब ही राजा उठ करि स्वामी कूं नमस्कार करि पूछने भये।

भो सर्वज्ञ देव या धर्मवृद्धि आप कौण कूं दीनी। ये बचन सुण करि स्वामी दिव्य ध्वनि में व्याख्यान कीया। हे महापद्म, भरत क्षेत्र का आर्य खण्ड मे रामगिरि पर्वत के ऊपर कुन्दकुन्द मुनिराज तिष्ठै है। उनु नै अबार मन बचन काय की शुद्धता करि नमस्कार कीया तदि धर्म वृद्धि दीनी है। असा स्वामी का वचन सुण करि सबही सभा के लोक नै बडा आश्चर्य उपज्या। भो भगवान ! आपकी दिव्य ध्वनि पहली भलै प्रकार हम सुनी हुती ज्यौ भरत क्षेत्रादि दस क्षत्र मे धर्म का मार्ग नांही अर पाखडी बहोत है जिनधर्म का नांम मात्र जानैगा नांही। अधकारी विपरीत मार्ग में चालेगा। पाखण्डी लोक की मान्यता बहोत होयगी। गुरू के द्रोही लोक हो जायेगा स्व स्व कल्पित ग्रन्थ बाचैंगे। अनेक पाखण्ड रचैंगे। जिनराज का धर्म आग्या समान कहु कहु दीसैगा। पाखण्डी का मठ जागि जागि पावैंगे। व्यतरादिक कुदेवन का चमत्कार प्रतिभासैगा। स्व स्व धर्म कं छोडि करि सबही लोक उन्मत मार्ग में धसैंगे। अब आप के मुख ऐसा ऋद्धि धारक मुनिराज का नाम सुन्या सो हमारे बड़ा आश्चर्य है।

तदि केवली वर्णन करते भए। ऐसे मुनिराज बिरले होते है। आग्या का चमत्कार समान आर्यखण्ड मे चमत्कार होय वो करेगें। वे सुर्गवासी देव को जीव है। यहा सभा में रविप्रभ सूर्यप्रभ देव है। तिनका वे आगलें भव के भाई हैं। जैसा शब्द हो ते दोय देवश्रीभगवत कै निकट आये।

नमस्कार करि सकल व्याख्यान पूछया। अर मुनिराज का दर्शन करणे वास्ते रामगिरी उपर आवतै भये। जिस बखत देव आये ता समय में रात्रि छी तदि मुनिराज कूं नमस्कार करि बैठया। मुनिराज बोल्या नही। अब उनका शिष्य बिना ध्यान तिष्ठै छे तिनका दर्शन भया।

उनसे ही बतलावरण होत भई। अर देवनै कही श्री सीमधर स्वामी तुम कू धर्मवृद्धि दीनी। तदि म्हे अठे आया। अबै स्वामी बोलते न्ही सो हम भगवान के समोसर्ण में ही पाछा जावा छा। या कह करि देव भगवान के समोसर्ण मै गये। अब प्रभाति का समय हुवा तदि प्रभात को नमस्कार सब ही शिष्य करते भये। अर रात्रि का समचार श्रीसीमधर स्वामी सबधी सर्व विधिपूर्वक मालूम कर्या। अर फेर कही दोय देव आपके दर्शरण करिणे कू आया आपका दर्शन करी वै देव भगवत की सभा मै ही गये। ये समचार सुणि करि कार श्री कुन्दकुन्द मुनिराज विशेष आनद कू प्राप्त भया। अर चौडे अैसा शब्द प्रकास कुरते भये। अब श्रीसीमधर स्वामी का दर्शण करेगे तदि आहारादि लगे। या कहि करि स्वामी फेर मौनि धार करि ध्यान में मग्न भये।

जेसा ध्यान आवै तदि वैसा कारण होय। अब दो च्यार दिन में चित्त की थिरतातै वसा ही ध्यान प्रगट भया। अर समवसरण बणाया। अर साक्षात श्री सीमधरस्वामी कू नमस्कार करता भया। वैही समय धर्मवृद्धि फेर भगवत की हुई। अर प्रसन्न भया। अर भगवान कही ज्यो देव गये है सौ पाछे आये। अब उसके अैसा नियम हुआ क ज्यो दर्शण बिन सव त्याग है। तदि देवा कही भो स्वामिन वै आये न्ही। तदि भगवंत आज्ञा करि तुम बे समय गये। तब देव पूछते भये समय कौनसा। तदि भगवत कहो याह रात्रि होती है वहा दिन है। वाह दिन है यहा रात्रि है सूर्य का गमन असा है। सौ तुम दिन मैं जावो तो उनका आगमन हो जायेंग। अैसा बचन सुरण करि वै दोनूं देव मध्याह्न् समय मैं आये। मुनिराज का दर्सरण हुआ अर परस्पर वचनालाप हुआ। देव हाथ जोडि नमस्कार करि वीनती करि। आप विमारण में विराजो अर सीमधर स्वामी का दर्शन करो। या बात सुरिण करि प्रसन्न होय आप विमान मे विराजे॥

अर विमान आकास मार्ग चाल्या सो अनुक्रम तें क्षेत्र भोगभूमि का देस के उपरि विमाण चाल्या जाय छा सो स्वामी के सामयिक का समय आ गया तो सामयिक करती वखत पीछी हाथ से गिर पडी। अर पवन का वेग अत्यंत लागा ही तदि स्वामी कही। अब हमारा गमन अगारी न्ही काहे तैं मुनिराज का बाना बिना मुनिराज की पिछानि नाही। तदि देव पीछी हेरण वडा यत्न किया। तदि पीछी पाई न्ही। अर गृध पक्षी जाति के जिनावरो की पाखा पडी हुती सो वे अति कोमल तिनकू भेली करि उनकी पीछी का आकार बनाय श्री मुनिराज कू सोप्या। तदि आप कोमल जाणि अर धर्म का कारण करणे के निमित्त अगीकार करि अगाडी गमन करता भया। इस कारण सैं दूसरा नाम गृद्धपिच्छाचार्य प्रगट भया। अब विदेह क्षेत्र में जाय पहुँचे।

श्री सोमधर स्वामी का समोसरण मानस्थभादि विभूति युक्त देख करि प्रसन्न भये। आप अतरग की सुधता विमाण सौ उतरि भगवान का समवसरण में प्रवेस कीया अर श्रीमीमधर स्वामी के तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार कीया। अर स्तुति करी। अहो सर्वज्ञ तुमारी महिमा अगम्य है अगोचर है। आप सकल वस्तु को सदैव ही देखो हो। आप जगत के गुरू हो। आप परमेसुर हो। आप के नाम से अनेक जन्म के पाप प्रलय होय है। आपका केवलज्ञान सर्व प्रतिभासी है। आप पूज्याधिक हो। आप ब्रह्मरूप हो। महेस हो विष्णु रूप हो। चतुर्मुख हो। गणधरादि देव भी तुमारे गुणगाण कथन करते-करते थक गये। हमारी कहा गति। आज हमारा सरीर सफल भया। आजि हमारी मोक्ष भई, असा मैं आनद मानूं हूँ। या कह करि भगवान की गध कुटी की कटनी ऊपर देव बैठावते भये।

काहे तै वाहका सरीर पाचसै धनुष का अर ये छह हाथ का इस कारण सैं वाही समय मे चक्रधर आया। गधकुटी के उपर नजरि गई। तदि हाथ मैं लेकरि विचार करता भया। यह कौनसा आकार है। छह खण्ड में यह आकार कहु न्ही देख्या। असा आकार कौण का है। तदि चक्रधर भगवान कू पूछता भया। हे जिनेन्द्र ये मनुष्य के आकार कौण सा जीव है तदि भगवान की दिव्य ध्वनि हुई। यह भरत क्षेत्र के मुनिराज है। तुम पहली धर्मवृद्धि का कारण पूछ्या था सो अब ये दर्शन करणे

निमित्त आये है। ऐसा शब्द सुण करि प्रसन्न होय चक्रधर मुनिराज कू कटनी ऊपर विराजमान करि नमस्कार करता भया। तदि मुनिराज का नाम **एलाचार्य** प्रकट होता भया।

अर भगवान की आज्ञा हुई इनकु सकल सदेह का निवारण करावणो वाला सिद्धान्त सिखावो अर ग्रन्थ लिखाय द्यो यो धर्म का उद्योतक होयगा। अब आप के जेता सदेह था सो सब भगवान सू पूछ करि निसन्देह भया। एक दिन चक्रधरि विनती करी। आप आहार कू उतरो। तदि आप कही जोग्यता नही। काहे तै। इहाँ दिन हमारा क्षेत्र मैं रात्रि। हम वाह के उपजे यहाँ आहार कैसे अगीकार करै। सो स्वामी दिन सात ताई निराहार ही रहे। भगवान की दिव्य ध्वनि रूपी अमृत को पीवे तै क्षुधा बाधा नै देती भई। च्यार शास्त्र लिखाये। (1) मतांतर निर्णय चौरासी हजार (2) सर्व सिद्धान्त मथन, बीयालीस हजार (3) कर्म प्रकास बहत्तरि हजार (4) न्याय प्रकास वासठि हजार ऐसे ग्र थ च्यार लेकरि भगवान सु आज्ञा मागि देव विमाण मै बैठ करि रामगिरि उपर आप विराजे। देव अपने स्थानक गये।

अब सर्व ही स्वामी की आज्ञा मै चालते भये। स्वेताम्बर धर्म का मार्ग छुडाय दिगम्बर धर्म का मार्ग बनाया। अर धनवाले कू धन बताया। पुत्रवान कू पुत्र दीना। राज्य वाला कू राज्य दीना। केवल धर्म का मार्ग बधावा कै निमत्त हजारू श्रावक व्रती होय गये। कु द सेठ सबन का मालिक भया। 594 मुनिराज हुवा। 400 अर्जिका हुई। अरु आप सकल सघ सहित श्री गिरनारि की यात्रा वास्ते चलता भया। अर स्वेताम्वरीन का सघ भी यात्रा चाल्या तिन की सख्या श्री पूज्य तो 84, गच्छ के यति 12000। अर उन के श्रावक श्रावकणी दोय लाख बावन हजार अर चाकर पयदि वहोत सो दोनु सघ श्री गिरनारि जी के नीचे अपणी अपणी हद कौ मुकाम करते भये।

जदि श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी का सघ ऊपर चढणे लगा तदि श्वेताम्बर का हलकारा अगारी गमन नही करणे दीना अर कही पहली जात्रा हमारी होयगी। पीछे यात्रा तुमारी होयगी ए समाचार सुणकर ही सब ही पाच्छा आय गया। अर आचार्य सू विनती करी। हे नाथ यह श्वेताम्वरी

तो बहुत, अपना संघ थोडा सो यात्रा कैसे होवैगी। तदी आचार्य आज्ञा करी तुम उनसूं कहो तुमारै हमारै कुछ वैर तो है न्ही। अर ज्यो तुम अपने मत का आडम्बर राख्या चावो छो तो औरू यहा आवो ज्यो जीतैंगे सो ही पहली यात्रा करेंगे। अबै यात्रा तुम भी नही करोगे। ऐसा वचन होता थका दोन्युं संघ का ही वाद ठहर्‌या। ज्यो जीतै सो यात्रा पहली करैगा। दिगम्बर के स्वामी कुदन्कुन्दाचार्य अर श्वेताम्बरी के मालिक शुक्लचार्य जाके चोदईस महाकाल पक्ष का साधन सो इनकै केतेक दिन तक वाद भया। जदि येक दिन शुक्लाचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का कमडल मैं मछ्या करि दीनी। अर समस्या मैं कोई कु कही ये काहे कै मुनि है इनका आचरण धीवर का है। ऐसी बात सुण करि कोई श्रावक कहो। स्वामी कमडल मैं काई है। स्वामी कही जल मैं कमल के फूल हैं। स्वामी दिखावो तदि कमडल औन्धो करयो सो कमचन का ढेर होय गया। अर स्वामी का नाम चोथा पद्मनद स्वामी प्रगट भया।

शुक्लाचार्य पोछो कमण्डल दोन्यु उडाय दोना। तदि स्वामी सब यतीन की चादरि बैठना उडाय दीना। शुक्लाचार्य कु नगन कर दीना पीछी तो उपर चादरया नीचे। इस तरैसं चादरि पर पोछी होय गयी कूटने लगो। यती बाहर मेलने लगा ऐसा स्वामी चमत्कार वताया। अरु आप बोला ऐसी धूर्त्त विधा से वाद नही होता है।

"अब मैं कहता हूँ या सरस्वती की प्रतिमा पाषाणमयी छै। ईने बुलावो ज्यो कहै सो ही पहली यात्रा करेगा। तदि शुक्लाचार्य अनेक यक्ष की स्थापना करि बुलाइ तो भी न्ही बोली। तदि स्वामी आप कमडल पीछी हाथ मैं ले करि श्री सीमधर स्वामी कु नमस्कार करि पीछी सरस्वती का शिर ऊपर घर करि आप प्रगट बोलते भये। हे देवि अब तू सत्य वचन का प्रकास कर हु। तदि देवी गर्जना रूप तीन बोल प्रगट बोल्या। आदि दिगम्बर आदि दिगम्बर2 गर्भ का बालक है चिन्ह जामै। तदि दिगम्बर सम्प्रदाय सत्य रूपी होय गई। श्वेताम्बरी भी देवी कू बुलावना सरू कर्‌या तदि देवी कही तुम बारा बरस तक झगडा करो। हम नै येक सत्य था सो ही कह्या। तदि श्वेताम्बरू कै सैकडो शिष्य श्री कुन्दकुन्दाचार्य का शिष्य भये। अर प्रथम यात्रा श्री कुन्दकुन्दाचार्य जो का संघ कालोग करता भया।'

अर श्री नेमिनाथ स्वामी की प्रतिष्ठा करी। अर सकल गिर प्रति-

ष्ठित भया तदि मूलसघ सरस्वती गछ बलात्कारगण श्री कुन्दकुन्दाचार्य का वंस बडे नदि मित्र मुनिराज कूँ आचार्य पद दीना। सो उनको आम्नाय सकल सध्यागायत्रीकर्म, अग न्यासादि कर्म प्रतिष्ठा कलसाभिषेक पूजा दान यात्रा इत्यादि छहु कर्मनि की स्थापना करि सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित्र रूपी तीन बलय का सूत्र की यज्ञोपवीत श्रावक लोक कूँ दीनी। अर जिनमार्ग का प्रकास करि आप बाराँ नग्र के बन मैं आये। सब श्रावकू सिख्या दे करि आप सन्यास धारि करि पाँचवे स्वर्ग गये। विसेस अधिकार बडे ग्रन्थ सै जाण लेणा। यहाँ अधिकार मात्र वर्णन किया है।

5. विशेष अध्ययन:

उक्त इत्तवृत्त को पढने के पश्चात् हम निम्न विवरण पर विशेष प्रकाश डालना चाहेगे :—

1. आचार्य कुन्दकुन्द का जन्म राजस्थान के बाराँ नगर को बतलाया गया है जो सम्भवत सही प्रतीत नही लगता। वैसे बारा मे पद्मनदि नाम के मुनि हुये थे जिन्होने जम्बूद्वीपपण्णति की रचना विक्रम की 9वी शताब्दी मे की थी तथा उस समय शक्ति-कुमार उसका शासक था। इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि उस पद्मनदि को ही कुन्दकुन्द का अपर नाम मानकर उनका बाराँ नगर लिख दिया गया।

2. माता-पिता के नाम में विशेष अन्तर नही है। कुन्दकुन्द के पिता का नाम कुन्द सेठ तथा माता का नाम कुन्दलता माना गया है जिनको दूसरे विद्वान भी स्वीकार करते है।

3. इतिवृत्त मे कुन्दकुन्द का समय सवत 770 दिया गया है। जो सभवत वीर निर्वाण सवत लगता है। लेकिन यह समय तो पट्टावली मे भी नही मिलता है। इसमें लिपिकर्ता की असावधनी मालूम होती है। जिसने 570 के स्थान पर 770 लिख दिया।

4. विदेह क्षेत्र मे जाने की घटना का वर्णन अन्यत्र भी इसी तरह मिलता है जिस तरह प्रस्तुत इतिवृत्त मे लिखा गया है। इस-लिये इसके बारे में कुछ नही कहना ही समीचीन होगा।

5. गिरनार पर्वत पर संघ सहित जाने, पाषाण की सरस्वती प्रतिमा को बुलवाने[1], श्वेताम्बराचार्य से वाद विवाद में विजय, दिगम्बरो का गिरनार की पहले यात्रा करना आदि घटना का भी अधिकांश वर्णन इतिवृत्त मे मिलता है ।

6 कुन्दकुन्द के चार नामो की घटना के सम्बन्ध में विशेष कुछ नही कहना, क्योंकि इन्ही सब नामो एव उनके जुडने के कारण भी सबमे समान ही है ।

7. एक विशेष बात जो इस इतिवृत्त में है वह है कुन्दकुन्द के गुरु मुनि जिनचन्द्र का रामगिरि पर्वत पर निवास तथा उनकी मृत्यु के पश्चात् स्वय कुन्दकुन्द का भी उसी पर्वत पर तप साधना एवं वही से विदेह क्षेत्र में गमन ।

यह रामगिरि पर्वत राजस्थान मे है अथवा अन्यत्र यह भी विचारणीय है । डा. हरदेव बाहरी ने रामगिरि पर्वत का अपने प्राचीन भारतीय सास्कृति कोश मे लिखा है कि रामगिरि एक छोटा पर्वत है जिसे कुछ लोग चित्रकूट पर्वत ऐसा मानते है किन्तु कुछ लोग इसे नागपुर जिले के अन्तर्गत मानते है । कालिदास ने अपने काव्य मेघदूत मे इसका वर्णन किया है ।

रामगिरी के सम्बध में पद्मपुराण एव हरिवश पुराण दोनो मे वर्णन मिलता है । निर्वाण भक्ति के अनुसार वशस्थल के पास पश्चिम की ओर कुथल गिरी शिखर से कुलभूषण एव देशभूषण मुनि का निर्वाण हुआ था और इसी वशगिरि पर रामचन्द्र जी ने जिनेन्द्र के सहस्रो चैत्य बनवाये थे इससे मालूम होता है कि वशस्थल के समीप वशगिरि पर चैत्य और चैत्यालय बने थे और वही पर कुलभूषण और देशभूषण का मोक्ष हुआ था' ऐसी दशा में वशगिरी ही कुथुगिरि होनी चाहिये । पद्मचरित के 40 वे पर्व में

---

1 कुन्दकुन्दो गणी येनोर्जयत गिरिमस्तके ।

सोऽवताद्वादिता ब्राह्मी पाषाणघटिता कलौ ।।14।।

पाण्डवपुराण —प्रशस्ति भ० शुभचन्द्र

लिखा है कि राम के द्वारा चैत्य बनने से इस तुंग पर्वत का नाम रामगिरी प्रसिद्ध हुआ।

पद्मपुराण के उक्त रामगिरि का वर्णन हरिवशपुराण में भी हुआ है कि वहाँ कुछ दिन आराम से ठहर कर वे पुरुष श्रेष्ठ (पाण्डव) कौशल देश में पहुँचे और वहाँ भी कुछ महिने रहकर रामगिरि गये जो पूर्वकाल मे राम लक्ष्मण द्वारा सेवित था और जहाँ पर्वत पर रामचद्र जी ने सैकड़ो चैत्यालय बनाये थे।

नेमिदूत मे विक्रम कवि ने गिरनार को ही रामगिरि नाम से सम्बोधित किया है। लेकिन मेघदूत की समस्या पूर्ति के कारण कवि ने रामगिरि को गिरिनार नाम दे दिया ऐसा लगता है।

अब प्रश्न उठता है कि इतिवृत्त मे दिया हुआ रामगिरि पर्वत कहाँ है। बारा नगर के पास रामगिरि पर्वत का होना दिखाई नही देता इसलिये यदि रामगिरि पर्वत का उल्लेख सही है **तो फिर कुथलगिरि ही रामगिरी पवत है।**

6 कुन्दकुन्द का विहार—

आचार्य कुन्दकुन्द के बिहार के सम्बध में कुछ भी इतिवृत्त नही मिलता। उनकी 95 वर्ष की आयु, विदेह क्षेत्र गमन, गिरिनार पर्वत की यात्रा मे श्वेताम्बर आचार्य पर विजय, महान् अध्यात्म प्रवक्ता जैसी विशिष्ट उपलब्धियो के होने पर यह तो सम्भव नही है कि उनका विहार सोमित रहा होगा। हमारे विचार से तो जब उन्होने गिरनार पर दिगम्बर धर्म की प्रधानता घोषित की होगी तब तो सारा दिगम्बर समाज उनका कट्टर समर्थक बन गया होगा अथवा दिगम्बर समाज में जाग्रति पैदा करने के लिये उन्होने स्वय ने हा देश व्यापी विहार किया होगा इसलिये जब वे गिरनार से वापिस मुड होगे तो वे राजस्थान की ओर अवश्य विहार किया होगा ऐसा हमारा दृढ विश्वास है।

7. राजस्थान मे कुन्दकुन्दाचार्य का विहार—

राजस्थान मे आचार्य कुन्दकुन्द सम्भवत. सर्व प्रथम चित्तौड आये होगे क्योकि आचार्य धरसेन भी गिरनार की चन्द्र गुफा मे रहते थे और

वही से वे राजस्थान में चित्तौड की ओर बिहार करते थे। इसलिये यह स्वाभाविक ही है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने भी राजस्थान को इसी मार्ग से पवित्र किया होगा। कुन्दकुन्द ने राजस्थान का सघन विहार किया। और दिगम्बर धर्म का प्रचार किया। यह उनके बिहार का ही प्रभाव ह कि विगत दो हजार वर्षो में राजस्थान में आचार्य कुन्दकुन्द जितने चर्चित एवं लोकप्रिय रहे उतनी अन्य किसो आचार्य को लोकप्रियता प्राप्त नही हो सकी।

8 भट्टारक सम्प्रदाय और आचाय कुन्दकु न्द—

आचार्य कुन्दकुन्द मूलसघ के प्रथम चर्चित आचार्य थे और उनके नाम से आगे आचार्य परम्परा की नीव पडी थी। "मूलसँघ कुन्दकुन्दाचार्यन्वये' ये दोनो प्रत्येक प्रशस्ति में लगाया जाने लगा। जो कुन्दकुन्द की समाज में लोकप्रियता का द्योतक है। आचार्य कुन्दकुन्द की परम्परा मे सवत्—1296 तक 75 आचार्य और हुये जिन्होने सभी ने अपने आपको मूलसघ से जोडा और परम्परा से कुन्दकुन्द की अम्नाय को अपनी अम्नाय स्वीकार किया। इसके पश्चात् जव भट्टारको का युग आया उन्होंने भी सभी प्रशस्तियो में चाहे वह मूर्ति पर प्रतिष्ठा के समय लिखी जाने वाली प्रशस्ति हो अथवा ग्रन्थ पर लिखो गई प्रशस्ति सभी मे आचार्य कुन्दकुन्द की प्रधानता स्वीकार की गई और यही कारण है कि राजस्थान मे आचार्य कुन्दकुन्द जन-जन की श्रद्धा के केन्द्र बन गये। सवत 1350 से लेकर 1900 तक के मूर्ति लेखो, ग्रन्थ-प्रशस्तियो, लेखक प्रशस्तियो मे आचार्य कुन्दकुन्दान्वय लिखा हुआ मिलता है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नही होगी कि भट्टारको ने ही आचार्य कुन्दकुन्द के नाम को महिमामडित किया तथा प्रत्येक शिलालेख में पहिले आचार्य कुदन्कुन्द के नाम स्मरण की परम्परा डाल कर जन मानस मे आचार्य कुन्दकुन्द की छाप छोड दी।

9. आचाय कुन्दकुन्द के चमत्कारिक जीवन का वर्णन—

सर्वप्रथम 10वी शताब्दी मे दर्शनसार में देवसेन ने लिखा है कि यदि पद्मनदि नाथ सोमधर स्वामी द्वारा प्राप्त दिव्य ज्ञान से वोघ न देते तो श्रमण मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते।[1]

1— जइ पउमणदिणाहो सोमन्धरसामिदिव्वणाणेण
ण विवोहइ सो समणा कह सुमग्ग पयाणंति ॥43॥

12वी शताब्दी में होने वाले आचार्य जयसेन जिन्होने समयसार, प्रवचनसार एवं पंचास्तिकाय पर तात्पर्यवृत्ति टीका लिखी थी तथा जो आचार्य कुन्दकुन्द की रचनाओ के प्रमुख टीकाकार माने जाते है, उन्होने भी पचास्तिकाय टीका के प्रारम्भ में विदेह गमन की स्पष्ट चर्चा की है। 16वी शताब्दी के भट्टारक शुभचन्द्र के पाण्डव पुराण में लिखा है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने गिरिनार पर्वत पर पाषाण की सरस्वती प्रतिमा को बुला दिया था।[1]

इसके पश्चात् भट्टारक शुभचंद्र ने ही समयसार कलश पर अपनी अध्यात्म तरगगिणी टीका में फिर लिखा है कि

अमृतविधुयतीशः कुन्दकुन्दो गणेश
श्रुतसुजिनविवाद स्याद्विवादाधिकार

भट्टारक रत्नचन्द ने अपने सुभौमचक्रिचरित्र (रचना काल स० 1683) में लिखा है कि आचार्य कुन्दकुन्द सीमन्धर स्वामी के तीर्थ में गये थे।

अथासीन्मूलसंघेस्मिन् गच्छे सारस्वताभिधे,
मुनि श्री कुन्दकुन्दाख्य श्रीसमन्धरतीर्थग. ॥[2]

षट् प्राभृत के सस्कृत टीकाकार श्रुतसागर मुनि ने टीका के अन्त में कुन्दकुन्द के विदेहगमन का उल्लेख किया है तथा अपने परमागम सार एवं भावसग्रह की प्रशस्ति में आचार्य कुन्दकुन्द का निम्न प्रकार स्मरण किया है :—[3]

सिरिमूलसघदेसिय गण पुत्थयगच्छ कोडकुन्दाणं।
परमण्णा-इंगलेसर वलिम्मि जादस्स मुणिपहाणस्स ॥226॥

सवत् 1671 मे रचित हरिवश पुराण के कर्ता भ० धर्मकीर्ति ने आचार्य कुन्दकुन्द को सीमन्धर स्वामी की वदना करने वाले पाँचनाम के धारी आचार्य के रूप मे निम्न प्रकार स्मरण किया है :[4]

1—पाण्डव पुराण—भ० शुभचन्द्र।
2— जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह—पं० परमानन्द पृष्ठ—61
3— वही पृष्ठ 191
4— हरिवश पुराण—भ० धर्मकीर्ति

श्री मूलसंघेऽजनि कुन्दकुन्द सूरिर्महत्माखिल तत्ववेदी ।
सीमन्धर स्वामी पदप्रवन्दी पञ्चाह्वयो जैनमत प्रदीप. ।3।

सुदर्शन चरित्र के निर्माता विद्यानदी मुमुक्षु ने लिखा है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने बौद्ध धर्माचार्य के यश को नष्ट किया था—[1]

वंद्यं वद्यमहं वदे कुन्दकुन्दाभिध मुनिं ।
यस्य यशोरवेनष्टा कृष्णास्या बौद्ध-कोशिका ।।

इनके पूर्व 11वी शताब्दी मे होने वाले भ० यशकीर्ति ने अपने चदप्पह चरिउ मे लिखा है कि जिन्होने इस कलि काल मे अपना यश फैलाया तथा साक्षात् केवली भगवान के दर्शन किये—

गरिण कुन्दकुन्द वच्छल्लगुणु, कों वण्णिरणउ सक्कइ इयरु जणु ।
कलिकालि जेरण मसि लिहिउ णाणु, सइ दिट्ठउ केवलऽणतधामु ।।

इसी तरह अपभ्रंश भाषा के कवि दामोदार ने सिरिपाल चरिउ में भी कुन्दकुन्द स्वामी का सादर स्मरण किया है ।

सो कुन्दकुन्द मुणिवरु जियक्खु ।
दिवि दिवि धुप मणुण्णय विवक्खु ।।
दीसइ पसतु जगि कय कयतु ।
सरतिय रडत्तरण रय महतु ।।
मथइ गोरसु मिण्हइ ण तक्कु ।
परितवइ तवरण गच्छइसवक्कु ।।

एक विरुदावली मे निम्न प्रशस्ति उपलब्ध होती है —

"तत्पट्टोदयाद्रि दिवाकर श्री एलाचार्य गृध्रपिच्छवक्रग्रीव पद्मनन्दि कुन्दकुन्दाचार्यवर्याणाम्"

इसमे कुन्दकुन्द को जिनचन्द्र मुनीन्द्र का शिष्य लिखा है । जयपुर निवासी कविवर बख्तराम साह ने आचार्य कुन्दकुन्द का अपने बुद्धिविलास मे बहुत ही उत्तम परिचय दिया है । 20 पद्यो में वर्णित आचार्य का परिचय बहुत ही उपादेय है जिसे हम अविकल रूप में यहाँ दे रहे है —

1— जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह—पृष्ठ सख्या 11

संवत् गुणचासा तणें, कुन्दकुन्द मुनिराय ।
भये भट्टारक अवनि पें, तिनकी है अमनाय ।557।

इनके कारण पाय कें, नाम भये जिम पाच ।
सुने सु अव विधिवत कहे, भविजन मानो साच ।558।

पदमनंदि मुनिवर हुतो, पेंहलें तो निज नाम ।
मुनिस्वर के परसंग तें, लहे नाम अभिराम ।559।

देव मिल्यो यक आयकें, करी वीनती येहु ।
कहि ऐसो अवहू करूं, आग्या मोकों देहु ।।560।।

तव मुनिवर अंसे कही, विदिह खेत्र ले जाय ।
श्रीमन्दिर स्वामी तणो, दरसण मोहि कराय ।।561।।

तव स्वरधारि विमान मुनि, चालयो मद्धि अकास ।
राह माहि पीछी गिरी, ठीक पडयो नहि तास ।।562।

मुनि बोले पींछी विना, हम नहि मग चालत ।
देव विचारी सो करूं, जिहि विधि चालें सत ।।563।।

गृधिपच्छि के परन की, पींछीं दई वनाय ।
गृधपछाचारिज यहै, तव तें नाम कहाय ।।564।।

स्वरमुनि गये विदेह में, दरसण किय जिनराय ।
ऊंची सव ही की लषी, धनुष पाच सें काय ।।565 ।।

चक्रवर्ति आयो तहा, दरस करण जगदीस ।
लषि वन मुनि कों हाथ में, लए उठाय महीस ।।566।

भाषी यह को जीव है, कमंडल पीछी धार ।
जिन भाषी मुनि है यहै, भरथषड कों सार ।।567।।

तव चक्रीयन कों धरयों, एलाचारिज नाम ।
फुनि आये निज क्षेत्र में, करि मनवांछित कांम ।568।

सोरठा

कवहु विनां प्रभात, सामायक लागे करन ।
समयें हुतों न भात, तातें वांकी ग्रींव हुव ।।569।।

तव तें नाम कहात, वक्रग्रींव आचार्य यह ।
फुनि सुनिऐं यह वात, कुन्दकुन्द मुनि जिम भये ।।570।।

अरिल

कबहु वाद करत है आंन मतोन तें,
कमडल भरयौं लर्ष्यो जल वृष्ण नवीन तें ।
वादी जलको मन्त्रनि तें मदिरा करी,
पूछी या कमडल में मद तुम क्यों भरी ।।571।।
तव मुनिवर चक्रेस्वरि को सुमरन कियो,
देवि कुन्द पुसपनि तें कमडल भरि दियो ।
तव तें लागे कहन मुनि कुन्दकुन्द है,
महिमा तिनकी जग मे अधिक अमद है ।।572।।
आंमनाय इनकी मत में अंसे भई,
सुनी वात कहियतु है मति जानहु नई ।
काहू समये सघ चल्यौ गिरनारि कौ,
कुन्दकुन्दमुनि वहुरि स्वेतपट लार कौ ।।573।।
साथि दुहुं मत के ही पच भये घनें,
पहुंचे गिर तरि जाय सवें अंसे भनें ।
पहलें दरसन करन तनौं झगरौ परयौ,
आपस माहि दुहु न ही कें अति रिस भरयौ ।।574।।
वेंतौ कहैं हमारौ ही मत आदि है,
दूजे कहैं अनादि हम वें वादि है ।
तव अकास से भई देववानी यही,
झगरते काहे आदि दिगम्बर है सही ।।575।।
पहिलें वदन करी नेम जिनचन्द की,
जवतें आमनाय ठेहरी मुनि कुन्द की ।
तवतें रचे कितेक ग्रन्थ भवि तारनें,
विसधीन कौ मत षडन कें कारनें ।।576।।

दोहा :—

इनहीं की अमनाय में, भये और मुनिराय ।
नामी तिनकी अलप--सी, कीरति कहौ वनाय ।।577।।

10 प्रतिमा लेखो मे आचार्य कुन्दकुन्द—

राजस्थान में जव भट्टारको का युग आया तो पचकल्याणक प्रतिष्ठाये, नये मन्दिरो का निर्माण एवं अन्य विधि विधान होने लगे । और

इन समारोहो के मुख्य निर्देशक स्वय भट्टारकगण अथवा उनके सघ मे रहने वाले ब्रह्मचारी पण्डित आदि बनने लगे। राजस्थान की भट्टारक गादिया मूलसघ की मान्यताओ मे विश्वास रखने वाली थी और मूलसघ परम्परा कुन्दकुन्दान्वय वाली थी इसलिये प्रत्येक प्रतिष्ठा लेख में आचार्य कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख किया जाने लगा और इससे आचार्य कुन्दकन्द के प्रति जन साधारण की भक्ति एवं श्रद्धा बढने लगी और वे कुन्दकुन्द के ग्रन्थो का स्वाध्याय करने लगे।

भट्टारक सकल-कीर्ति की परम्परा के भट्टारक भी मूलसघी थी। तथा वे कुन्दकुन्दाम्नाय को मानते थे इसलिए मूर्ति लेखो में 'मूलसघ लिख कर भट्टारक पद्मनन्दि अथवा कुन्दकुन्द एव अन्य भट्टारको का नाम लिख कर मूर्ति लेख लिखा करते थे इसी तरह अजमेर, आमेर, नागौर को भट्टारक गादी के भट्टारकगण भी अपने अधिकाश मूर्ति लेखो मे आचार्य कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख करते रहे है इससे आ० कुन्दकुन्द के प्रति श्रद्धा एव भक्ति, जन-जन में व्याप्त हो गयी।

प्रतिमा लेखो मे कुन्दकुन्दान्वय लिखने की परम्परा का श्रेय भट्टारक सकलकीर्ति को जाता है। इस सम्बन्ध में सवत 1490 (सन् 1433) मे होने वाली पंचकल्याणक प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित प्रतिमाओ पर कुन्दकुन्दान्वय प्रथम बार लिखा हुआ मिलता है। उदयपुर (राजस्थान) के सम्भवनाथ मदिर में चौबीसी पर निम्न प्रकार का लेख मिलता है।

सवत 1490वर्ष वैशाख सुदी 9 शनो मूलसघे नद्याम्नाये सरस्वती गच्छे श्री कुन्दाकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक पद्मनन्दिदेवा तत श्री सकलकीर्त्य पदेशात् हूबड जातीय श्रेष्ठ हादा ·········· एते श्री चद्रप्रभ चतुर्विश - तिका बिम्ब प्रणमति।

भट्टारक सकलकीर्ति का अनुसरण देहली—चित्तौड—चम्पावती—आमेर गादो के भट्टारको ने किया और प्रतिष्ठाओ में प्रतिष्ठित सभी मूर्तियो पर आचार्य कुन्दकुन्दान्वय लिखा जाने लगा। इससे आचार्य कुन्दकुन्द का नाम जन-जन के हृदय पर छा गया।

प्रतिमा लेखो के समान ग्रन्थ प्रशस्तियो में भी मूलसघी भट्टारको ने आचार्य कुन्दकुन्द का सादर एव सर्वप्रथम नाम लिखने की परम्परा को

जन्म दिया। भ. सकलकीर्ति के शिष्य एव लघु भ्राता ब्रह्म जिनदास ने जम्बू स्वामी चरित्र मे आचार्य कुन्दकुन्द का निम्न प्रकार उल्लेख किया है।

श्रीकुन्दकुन्दान्वय मौलिरत्न श्री पद्मनदि विदित पृथिव्या।
सरस्वती गच्छ विभूषण च, बभूव भव्यालि सरोजहस' ॥

इसी तरह भट्टारक जिनचद्र के शिष्य पडित मेधावी ने अपने धर्म सग्रह श्रावकाचार मे आचार्य कुन्दकुन्द का निम्न प्रकार स्मरण किया हैं—

स नदिसघा सुरवर्त्म दिवाकरोभूच्छ्री कुन्दकुन्द इति नाम मुनिश्वरोऽसौ।

इस प्रकार 16वी, 17वी, 18वी एव 19वी शताब्दियो मे होने वाले सभी मूलसघी भट्टारको ने प्रतिमा लेखो, ग्र थ प्रशस्तियो, शिलालेखो आदि मे कुन्दकुन्द का स्मरण करक ५०० वर्षो तक कुन्दकुन्द आचार्य को जन मानस पर इतना बिठा दिया कि उनके लिये कुन्दकुन्द का नाम ही मगल स्वरूप हो गया।

समकालीन आचार्य

(1) आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् उमास्वामी आचार्य गादी पर विराजमान हुए। उनको 19 वर्ष गृहस्थावस्था मे रहने के पश्चात् मुनि दीक्षा दी गयी और उन्हे अपने गुरू के पाद मे 25 वर्ष के लम्बे समय तक मुनि अवस्था में रहने का अवसर मिला। उसके पश्चात् वे 40 वर्ष 8 महीने 1 दिन तक आचार्य पद पर रहे। प्रोफेसर हार्नले, डा० पिटर्सन और डा० सतीश चन्द्र ने आचार्य पट्टावली के आधार पर उमास्वामी को ईसा की प्रथम शताब्दी का विद्वान माना है जो उक्त पट्टावली के अनुसार मिलता है। लेकिन डा नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य प्रभृति विद्वानो ने आचार्य कुन्दकुन्द के पश्चात् गृद्धपिच्छाचार्य का नाम गिनाया है और उन्हे ही तत्वार्थसूत्र का रचयिता माना है। इसी के साथ उमास्वामी एव गृद्धपिच्छाचार्य एक ही आचार्य के दो नाम थे ऐसा भी उल्लेख मिलता है जैसा कि कहा है—

तत्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्र सजात उमास्वामि मुनीश्वरम् ॥

इसमें गृद्धपिच्छाचार्य नाम के साथ उनका दूसरा नाम उमास्वामी मुनीश्वर भी बतलाया है।

तत्वार्थसूत्र रचियता गृद्धपिच्छाचार्य का उल्लेख श्रवणबेलगोला के अभिलेख संख्या 40, 42, 43, 47 और 50 में पाया जाता है इसी के साथ अभिलेख सख्या 105 और 108 मे तत्वार्थ सूत्र के कर्ता का नाम उमास्वाति भी आया है और गृद्धपिच्छ उनका दूसरा नाम बतलाया गया है[1]—

श्रीमानुमास्वातिरयं यतीशस्तत्वार्थसूत्रं प्रकटी चकार ।
यन्मुक्तिमार्गाचरणोद्यतानां पाथेयमर्घ्यं भवति प्रजाना ।।
तस्यैव शिष्योऽजनि गृद्रपिच्छ–द्वितीय संज्ञास्य बलाकपिच्छ. ।
यत्सूक्तिरत्नानि भवन्ति लोके मुक्त्यग ना मोहनमण्डनानि ।।

इस प्रकार दिगम्बर साहित्य और अभिलेखो का अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि तत्वार्थसूत्र के कर्त्ता उमास्वामी एव गृद्धपिच्छाचार्य एक ही थे ।

उमास्वामी की तत्वार्थसूत्र एक मात्र कृति है जो उन्होने सभवत: आचार्य पद प्राप्त करने पश्चात् लिखी थी । यही कारण है कि तत्वार्थसूत्र पर आचार्य कुन्दकुन्द का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने पचास्तिकाय मे द्रव्य का लक्षण निम्न प्रकार लिखा है—

दव्व सलक्खणय उप्पादव्वयधुवत्त सजुत ।
गुणपज्जयासय वा जं त भण्णति सव्वण्हू ।। —10

इसी गाथा के आधार पर तत्वार्थसूत्र मे तीन सूत्र मिलते हैं

सद् द्रव्य लक्षणम्
उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य–युक्तं सत्
गुणपर्ययवद् द्रव्यम्

कुन्दकुन्द (तत्वार्थसूत्र)

देवा चउण्णिकाया (पंचास्तिकाय— 118) देवाश्चतुर्णिकाया: । 4–1
धम्मत्थिकायाभावे (नियमसार 184) धर्मास्तिकाया भावात् 10–8

(2) आचार्य जिनसेन

आचार्य कुन्दकुन्द के समकालीन अपराजित मुनि अपरनाम यशोभद्राचार्य एव आचार्य जिनसेन थे । ये वे ही जिनसेन है जिन्होने राजस्थान

---

1. जैन शिलालेख—प्रथम भाग ।

के खण्डेला नगर में जाकर सारे नगर को महामारी के आतक से बचाया था तथा वहा के राजा खण्डेलगिरि को जैनधर्म मे दीक्षित करके खण्डेलवाल जैन जाति की स्थापना की थी। यह विक्रम् सवत् 101 की घटना है। खण्डेलवाल जैन जाति की उत्पत्ति के पीछे जो घटना है वह सक्षिप्त रूप मे निम्न प्रकार है—

खण्डेला नगर मे खडेलगिरि का शासन था। खडेलगिरि चौहान वशीय राजपूत था तथा उसके राज्य मे 84 सामन्त थे जिनमे उस समय 2 सामन्तो का पद खाली था। खडेला मे विक्रम सवत् 101 के पूर्व महामारी फैली जिसके कारण प्रजाजनो की मौत होने लगी। वे नगर छोड-छोड भागने लगे। राजा खडेलगिरि को बडी चिंता हुई। उन्होने मन्त्रियो एव पण्डितो को मत्रणा के लिए बुलाया। पडितो ने कहा कि यदि यज्ञ में नर वलि दी जावे तो महामारी का प्रकोप शात हो सकता है। महाराजा खण्डेलगिरि इस पर मौन रहे। इसके कुछ समय बाद वहाँ एक विशाल मुनि सघ का आगमन हुआ। जब वे नगर के बाहर उद्यान में ध्यानस्थ थे उनमे से मुनियो को उठा कर यज्ञ मे होम दिया। लेकिन इससे महामारी का प्रकोप और भी बढ गया। इसी समय भाग नगर मे अपराजित मुनि ससघ विराजमान थे। जब उन्हे यज्ञ मे मुनियो को होम दिये जाने के समाचार मालूम हुये तो उन्होने तत्काल खण्डेला जाकर मुनि सघ पर आये हुए उपसर्ग को दूर करने की बात कही। सभी ने आचार्य श्री के आदेशानुसार वहाँ जाने की सहमति व्यक्त की। अन्त मे सबको सम्मति से आचार्य जिनसेन को वहा भेजा गया। आचार्य जिनसेन ने वहा पहुँच कर चक्रेश्वरी देवी की आराधना की और खडेलगिरि राजा सहित सभी को महामारी से मुक्ति दिलाई। जिनसेन ने खडेलगिरि राजा सहित सबको जैनधर्म में दीक्षित किया इन्ही के साथ 83 अन्य सामन्तो को भी जैनधर्मावलम्बी बनाया। और उनकी खडेलवाल जाति स्थापित की राजा का साह गोत्र घोषित किया तथा सभी सामन्तो को गाँवो के नाम से गोत्रो का नाम दिया।[1]

18वी शताब्दी के हिन्दी कवि बख्तराम साह ने इस घटना का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

---

1 खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल

सिधांडे जिनसेन के अपराजित मुनिराय ।
राजकुली चौबोसी धरि प्रतिबोध्या मुनि आय ।
संवत एक सो एक नगर खंडेले जाय ।
चौरासी श्रावक कुली जैन धरम उपजाय ।

आचार्य जिनसेन के दिवगत होने के पश्चात् अपराजित मुनि अपर नाम यशोभद्रचार्य ने शेष सामन्तो को जैन धर्म मे दीक्षित करके उनके गाँवो के नाम से गोत्रो की घोषणा की ।

इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द के समकालीन आचार्य अपराजित एव जिनसेनाचार्य हुये थे जिन्होने एक सशक्त जाति की स्थापना की और क्षत्रियो को जैनधर्म मे दीक्षित करके उन्हें पूर्ण शाकाहारी बनाया ।

3 यतिवृषभ

आचार्य कुन्दकुन्द के समय पूर्व ही यतिवृषभ हुये जो आगम शास्त्र के महान ज्ञाता थे । वे आठवे कर्मप्रवाह के ज्ञाता थे । उनको आचार्य मक्षु और नागहस्ति का शिष्यत्व स्वीकार करने का श्रेय प्राप्त था । व्यक्तित्व की दृष्टि से यतिवृषभ भूतबलि आचार्य के समकक्ष कहे जा सकते हैं। उन्होने अपनी प्रतिभा का चूर्णिसूत्रो में उपयोग किया था ।

4 आचार्य भूतबलि

षट्खंडागम के रचयिता आचार्य भूतबलि भी आ० कुन्दकुन्द के समकालीन थे और अपने अतिम वर्षो में आचार्य कुन्दकुन्द के साथ-साथ वे भी जैन धर्म के प्रचार प्रसार में लगे हुये थे । भूतबलि का समय ईस्वी सन् 66 से 156 तकमाना जाता है ।

साहित्यसंरचना

आचार्य कुन्दकुन्द महान् ग्रन्थ निर्माता थे उन्होने जितने ग्रन्थ लिखे वे सभी अभूतपूर्व हैं । वे प्राकृत भाषा के गम्भीर वेत्ता थे इसलिए उन्होने अपनी सभी रचनाएँ इसी भाषा में निबद्ध की है । उनकी भाषा को शौर सेनी प्राकृत कहा जाता है । जैन साहित्य गगन के वे जगमगाते सूर्य हैं उन्होने देश को ऐसे ग्रंथ रत्न दिये जिनकी समता के अन्य ग्रंथ ढूंढ

निकालना कठिन हैं। उन्होने 84 पाहुडो की रचना की थी लेकिन दुर्भाग्य से वे सब हमे उपलब्ध नही है। अब तक उनके निम्न ग्रन्थ मिल चुके हैं।

1 पचास्तिकाय
2. समयसार
3 प्रवचनसार
4 नियमसार
5. दसण पाहुड
6 चारित्त पाहुड
7. सुत्त पाहुड
8 बोध पाहुड
9 भाव पाहुड
10 मोक्ख पाहुड
11 लिंग पाहुड
12 शील पाहुड
13 रयणसार
14 बारस अणुपेक्खा
15 सिद्ध भक्ति
16 श्रुत भक्ति
17. चारित्त भक्ति
18 योग भक्ति
19. आचार्य भक्ति
20. निर्वाण भक्ति
21 परमेष्ठि भक्ति
22 थोस्सामि थुदि
23. मूलाचार

उक्त 23 ग्रन्थो के अतिरिक्त थिरूकुरल को भी कुछ विद्वान आचार्य कुन्दकुन्द की रचना मानते है जिनके सम्बध में हम आगे विचार करेंगे। अब हम कुन्दकुन्दाचार्य के एक -2 ग्रंथ का अध्ययन प्रस्तुत करेगे साथ ही उनकी सस्कृत टीकाओ तथा हिन्दी भाषा वचनिकाओ का भी विस्तृत परिचय देंगे जिससे प्राकत, सस्कत एव हिंदी मे लिखे गये ग्रन्थो का पूरा परिचय प्राप्त हो सके तथा भविष्य में उनके ग्रन्थो के सम्बध मे और खोज की जा सके। यही नही अन्त में राजस्थान के शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत उनके ग्रन्थो की पाँडुलिपियो की भी एक सूची दी जा रही है जिससे शोध एव सम्पादन में वे उपयोगी सिद्ध हो सके।

— ० —

पंचास्तिकाय

पंचास्तिकाय आचार्य कुन्दकुन्द की प्रथम कृति मानी जाती है। आचार्यश्री की अन्य कृतियो की तुलना में पचास्तिकाय एक भिन्न कृति है जिसमें अस्तिकाय् द्रव्यो का विशद वर्णन किया गया है। ये पाँच अस्तिकाय है जीवास्तिकाय, अजीवास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकासास्तिकाय। पचास्तिकाय मे इन द्रव्यो का वर्णन प्रथम श्रतस्कध ख ंड मे किया गया हैं। तथा दूसरे श्रुतस्कध खड मे नव पदार्थ तथा मोक्षमार्ग (रत्नत्रय) का वर्णन है।

पंचास्तिकाय का मुख्य विषयः—

मगलाचारण के पश्चात आचार्य कुन्दकुन्द कहते है कि पांच अस्तिकाय द्रव्यो का समह ही लोकाकाश है। उसके आगे अलोकाकाश है। ये पाँच अस्तिकाय है जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश। ये पांचो द्रव्य अणु महान होने से कायत्वयुक्त है किन्तु कालाणु को किसी प्रकार भी कायत्व प्राप्त नही है। काल द्रव्य सहित छह द्रव्य कहलाते हैं। ये छहो द्रव्य एक दूमरे को अवकाश देते है, एक दूसरे में प्रवेश करके उसमे मिल जाते हैं तथा कितना भी अल्प होने पर भी अपने स्वभाव को नही छोडते द्रव्य का न तो उत्पाद है, न ही विनाश। वह तो सत स्वभाव वाला है। उत्पाद-व्यय-ध्रवता पर्यायो के कारण होता है क्योकि द्रव्य के बिना पर्यायें नही होती और पर्यायो के बिना द्रव्य नही होती। इस प्रकार द्रव्य सत् लक्षण वाला है, उत्पाद व्यय घ्रौव्य युक्त है तथा गुण पर्याय सहित है। जीवादि षट्द्रव्य भाव है।

जीव के गुण चेतना तथा उपयोग है और जीव की पर्यायि देव मनुष्य नारक तिर्यंच रूप अनेक है। भाव का कभी नाश नही होता तथा अभाव का उत्पाद नही होता। जीव की एक पर्याय का नाश होकर जीव की दूसरी पर्याय का उत्पाद होता है। उस समय जीवभाव न नष्ट होता है और न उसका उत्पाद ही होता है। वही जन्म लेता है वही मरता है और वही फिर उत्पन्न हो जाता है।

काल की सत्ता स्वय सिद्ध है। काल पाँच वर्ण और पाँच रस रहित, दो गंध और आठ स्पर्श रहित अगुरूलघु, अमूर्त और वर्तना लक्षण वाला

है। यह निश्चय काल का स्वभाव है। व्यवहार काल समय, निमेष, कला, घडी, अहोरात्र, मास, ऋतु, अयन और वर्ष ऐसा काल व्यवहार काल है और वह पराश्रित है।

जीव द्रव्यास्तिकाय

इसके आगे सभी अस्तिकाय द्रव्यो का विशेष वर्णन किया गया है आत्मा जीव है, उपयोगमय है, कर्त्ता है, भोक्ता है, स्वदेह प्रमाण है, अमूर्त है, तथा कर्म सयुक्त है। यह जीव का लक्षण है। कर्म मुक्त होने पर यह आत्मा सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अमूर्त, अतीन्द्रिय, अव्याबाध अनन्त सुख को प्राप्त कर लोक के अग्रशिखर में स्थित हो जाता है जो सिद्धालय कहलाता है।

जो इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोश्वास–इन चार प्राणो से जीता है जियेगा और पूर्वकाल में जीता था, वह जीव है। मिथ्यादर्शन कषाय एव योग सहित जीव ससारी होते है एव उनसे रहित जीव सिद्ध कहलाते हैं। जीव उपयोगमय है। यह ज्ञानोपयोग एव दर्शनोपयोग से दो प्रकार का है। जीव मे पाच गुण पाये जाते है वे हैं पारणामिक, क्षायिक, औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक। पारणामिक भाव से जीव अनादि अनत है। क्षयिक भाव से आदि अनन्त है एव शेष तीनो भावो से सादि सान्त है। जीव/आत्मा का विविध प्रकार से वर्णन करने के अन्त मे जीव एक दो तीन चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ एव दस भेद वाला है।

अजीवास्तिकाय

पुदगल काय के स्कन्ध, स्कन्ध देश, स्कन्धप्रदेश और परमाणु भेद से चार भेद है। सब स्कन्धो का जो अतिम भाग है उसे परमाणु कहते हैं। जो बाहर एव सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार का है। यह परमाणु अविभागी, शाश्वत, मूर्तिक और अशब्दमय होता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदि धातुओ का कारण परमाणु ही है। परमाणु का सघात स्कन्ध है। शब्द स्कधो के टकराने से उत्पन्न होता है। इन्द्रियो द्वारा उपभोग्य विषय, इद्रियाँ, शरीर, मन, कर्म और अन्य जो कुछ मूर्त्त है वह सभी पुद्गल है।

धर्मस्तिकाय और अधर्म द्रव्यास्तिकाय

धर्मास्तिकाय अस्पर्श, अरस, अगध, अवर्ण और अशब्द है। लोक-व्यापक है अखण्ड, विशाल और असख्यात प्रदेशी है। धर्म द्रव्य स्वयमेव गमनशील जीव पुदगलो को उदासीन अविनाभावी सहायकमात्र होने से गति क्रिया मे कारणभूत है। जिस प्रकार पानी स्वय गमन करता हुआ और पर को गमन न कराता हुआ, स्वयमेव गमन करती हुई मछलियो को उदासीन अविनाभावी सहायरूप कारण मात्र से गमन मे अनुग्रह करता है उसी प्रकार धर्म द्रव्य भी जीव पुदगलो को गमन में उदासीन निमित्त है। अधर्म द्रव्य स्थिति क्रिया युक्त जीव और पुद्गलो को उदासीन अविनाभाव सहायमात्र होने से स्थिति क्रिया मे कारण भूत है। जिस प्रकार पृथ्वी अश्वादि को स्थिति मे उदासीन निमित्त है उसी प्रकार अधर्म द्रव्य जीव पुद्गलों को ठहरने में उदासीन निमित्त है। ये दोनो द्रव्य लोक पर्यन्त ही गति स्थिति के निमित्त है। ये असंख्यात प्रदेशी है।

आकाश द्रव्यास्तिकाय

छह द्रव्यो वाले लोक मे सभी द्रव्यो को जो पूर्ण अवकाश देता है वह आकाश द्रव्य है। आकाश द्रव्य जीव पुद्गल को गति स्थिति में सहायक नही है। लेकिन ये तीनो द्रव्य एक क्षेत्रावगाही है इस दृष्टि से उनमें एकत्व है। पुद्गल द्रव्य मूर्त है बाकी सभी द्रव्य दूसरे शब्दो में अमूर्त है। इन्द्रिय ग्राह्य पदार्थ मूर्त है शेष सभी अमूर्त है।

अन्त में आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि प्रवचन के सारभूत पचास्तिकाय सग्रह को जानकर जो रागद्वेप को छोडता है वह दुःख से परिमुक्त होता है।

पचास्तिकाय के द्वितीय स्कध मे नव पदार्थ पूर्वक मोक्ष मार्ग का कथन किया गया है। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, सवर निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये सव पदार्थ कहे जाते हैं। चेतनात्मक उपयोग लक्षण वाले जीव दो प्रकार के है एक ससारी और दूसरे सिद्ध। ससारी-जीव देह सहित है और सिद्ध देह रहित है। ससारो जीव इन्द्रियो की अपेक्षा पाच प्रकार के है।

एकेन्द्रियः— पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पाचो मन परिणाम रहित एकेन्द्रिय

है। इन्हे मात्र स्पर्श का ही ज्ञान होता है। इनमें भी पृथ्वीकायिक अप्कायिक एव वनस्पतिकायिक जीव स्थावर शरीर के सयोग वाले हैं तथा वायुकायिक और अग्निकायिक जीव शरीर सयोग वाले हैं।

द्वीन्द्रिय — शबूक, मातृवाह, शख, सीप और पगरहित कृमि दो इन्द्रिय वाले जीव है।

त्रीन्द्रिय — जू, कुभी, खटमल, चीटी, बिच्छू आदि जन्तु रस, स्पर्श और गध को जानते है। ये सभी त्रीन्द्रिय जीव हैं।

चतुरिन्द्रिय —डास, मच्छर, मक्खी, मधुमक्खी, भवर और पतगे आदि जीव रूप रस, गध और स्पर्श को जानते हैं ये सभी चतुरिन्द्रिय जीव हैं।

पञ्चेन्द्रिय — वर्ण, रस, स्पर्श, गध और शब्द को जानने वाले देव, मनुष्य, नारक, तिर्यञ्च जो जलचर, थलचर खेचर से चर होते हैं वे पञ्चेन्द्रिय जीव हैं।

इनमें देव चार प्रकार के, मनुष्य दो प्रकार (कर्मभूमिज और भोगभूमिज) के, नारकी भेद उनकी पृथ्वी जितने भेद एव तिर्यञ्च अनेक प्रकार के हैं।

अजीव पदार्थ:—

जिसमे ज्ञान एव चेतना नही हो वे सब अजीव हैं। आकाश, काल, पुद्गल, धर्म और अधर्म में जीव के गुण नही है इसलिये वे सब अजीव है। जो सस्थान, सघात, वर्ण, रस, स्पर्श, गध और शब्दादि पर्यायें हैं वे सब पुद्गल द्रव्य निष्पन्न है किन्तु जो अरस, अरूप, अगध है अव्यक्त है अशब्द है अनिर्दिष्ट सस्थान है, चेतना गुण वाला है और इन्द्रियो द्वारा अग्राह्य है उसे जीव जानो।

पुण्य-पाप —

जीव के शुभ परिणाम पुण्य है और अशुभ परिणाम पाप है। उन दोनो के द्वारा पुद्गल मात्र भाव कर्मपने को प्राप्त होते है। कर्म मूर्त हैं।

क्योकि कर्म का फल जो विषय है वे नियम से स्पर्शनादि इन्द्रियों द्वारा सुख रूप से अथवा दु.ख रूप से भोगे जाते है इसलिये कर्म मूर्त्त है।

आस्रव पदार्थ

पुण्यास्रव एव पापास्रव के भेद से आस्रव दो प्रकार का होता है। प्रशस्त राग, अनुकम्पापरिणति एवं चित्त की अकलुषता—यह तीन शुभ भावो में पुण्य का आस्रव होता है। अरहत सिद्ध, साधुओ के प्रति भक्ति, धर्म से यथार्थ चेष्टा और गुरुओ का अनुगमन प्रशक्त राग कहलाता है। तृषातुर क्षुधातुर अथवा दु.खी ये देखकर जो जीव मन मे दुःख पाता हुआ उसके प्रति करुणा से वर्तता है उसका वह भाव अनुकम्पा है।

बहु प्रमादवाली चर्या, कलुषता, विपयो के प्रति लोलुपता, पर को परिताप करना तथा पर को अपवाद बोलना वह पापास्रव है। चारो सज्ञाये, तीन लेश्याएँ, इन्द्रियबशता, आर्त्त रौद्रध्यान दु.प्रयुक्त ज्ञान और मोह ये भाव पापास्रव के कारण है।

संवर पदार्थ

जिसे सर्व द्रव्यो के प्रति राग, द्वेष या मोह नही है जो इन्द्रिय कषाय और सज्ञाओ का निग्रह करता है उस सुख-दु.ख के प्रति समान भाव वाले योगी को शुभ अशुभ कर्म का आस्रव नही होता है। वही सवर है।

निर्जरा पदार्थ

सवर और योग से युक्त जो जीव बहुविध तप करता है वह नियम से अनेक कर्मों की निर्जरा करता है। निर्जरा का मुख्य हेतु ध्यान है।

बंध पदार्थ

जब आत्मा विकारी होता हुआ शुभ अथवा अशुभ भाव को करता है वह आत्मा उस भाव द्वारा विविध पुद्गल कर्मो से बद्ध होता है। मोह राग द्वेष भाव को बन्ध का अन्तरग कारण कहा है और योग को जो कि ग्रहण का निमित्त है उसे बन्ध का बहिरग कारण कहा है।

मोक्ष पदार्थ

जो संवर से युक्त ऐसा जीव सर्व कर्मो की निर्जरा करता हुआ

वेदनीय और आयु रहित होकर भव को छोडता है। इस प्रकार सर्व कर्म पुद्गलो का वियोग होने के कारण वह मोक्ष है।

इस प्रकार पञ्चास्तिकाय षट् द्रव्यो, नव पदार्थों की महत्ता जानने के लिए एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सस्कृत टीकाए

इस ग्रन्थ पर सस्कृत मे दो टीकाये मिलती है। एक अमृतचन्द्र की तथा दूसरी जयसेनाचार्य की।

अमृतचन्द्र की टीका का नाम समय व्याख्या है इसमे 173 गाथाओ पर टीका मिलती है। जिन्हे दो श्रुतस्कन्धो में विभक्त किया गया है। अन्त की 20 गाथाओ में वर्ण्य विषय को मोक्षमार्ग प्रपच चूलिका कहा है। समयसार एव प्रवचन सार की अपेक्षा पचास्तिकाय की टीका सक्षिप्त है। यह अवश्य है कि टीका प्रवाहमय है तथा पाठको को टीका का अर्थ समझने में देर नही लगती।

जयसेन ने अपनी टीका को समयसार एव प्रवचन सार की टीकाओ के समान प्रत्येक पद की व्याख्या करके उसे सुबोध एव सरल बनाया है। एक विशेषता यह है कि अमृतचन्द एव जयसेन की टीकाओ की गाथा सख्या मे कोई अन्तर नही है। दोनो मे समान सख्यावाली गाथायें है।

उक्त दोनो टीकाओ के अतिरिक्त बालचन्द की पचास्तिकाय पर भी कन्नड भाषा में निबद्ध टीका मिलती है। टीका का नाम तात्पर्य वृत्ति है। यह टीका भी सरल एव सुबोध है।

पचास्तिकाय की प्राचीनतम पाण्डुलिपि

जयसेन कृत पचास्तिकाय टीका की एक प्राचीनतम पाण्डुलिपि जयपुर के श्री दिगम्बर जैन मदिर बडा तेरहपंथ के शास्त्र भडार में सग्रहित है जिसका लेखनकाल सवत 1319 (1262, एडी) है। पाण्डुलिपि मे अतिम पृष्ठ नही है इसलिये प्रशस्ति पूरी नहीं है। पाण्डुलिपि अत्यधिक

साफ एव शुद्ध लिखी हुई है। पाण्डुलिपि कागज पर है। अतिम पाठ निम्न प्रकार है .—

इति तात्पर्यवृत्तौ प्रथमस्तावदेकादशोत्तरशत गाथाभिरष्टभिरतराधिकारै पचास्तिकाय-षटद्रव्य-प्रतिपादक नामा प्रथम महाधिकारस्तदनतर पचशत गाथाभि दशभिरतराधिकारैर्नवपदार्थप्रतिपादकाभिधानो द्वितीय महाधिकारस्तदनतरविशतिगाथाभि द्वादशस्थलैर्मोक्षमार्गप्रतिपादकाभिधान तृतीय महाधिकारश्चेत्याधिकार त्रय समुदायेनैशशीत्युत्तरशतगाथाभिः पचास्तिकायप्राभृत समाप्त'। सवत 1319 चैत्रबुदी दशम्यां बुधवासरे अद्येह योगिनीपुरे समस्तराजावलीसमालकृत सुरत्राण गयासदीन राज्ये अत्रस्थित अग्रोतकान्वय परम श्रावक जिनचरणकमल—

सम्पादन के लिये यह पाण्डुलिपि बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है।

प्रभाचन्द की भी पंचास्तिकाय पर टीका मिलती है जिसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर में संग्रहीत है।

हिन्दी टीकाऐं:—

पचास्तिकाय पर निम्न विद्वानो की हिन्दी टीकायें मिलती है:—

1.	पचास्तिकाय भापा	हीरानन्द
2.	पचास्तिकाय टीका	पाण्डे हेमराज
3.	पचास्तिकाय भाषा	बुधजन
4	पंचास्तिकाय टब्बा टीका	—

1. पंचास्तिकाय भाषा—पं० हीरानन्द

पचास्तिकाय पर हिन्दी टीका करने वालों मे हीरानन्द प्रथम कवि है जिन्होने सवत 1707 ज्येष्ठ शुक्ला सप्तमी को भाषा टीका करने वालो में अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। आगरा में महाकवि बनारसीदास के समय से ही अध्यात्मिक शैली थी जिसके बडे-बडे कवि, लेखक एवं

पडितगण सदस्य थे। वे नये-नये ग्रन्थो की भाषा टीका करवाने की योजना बनाते और विद्वानो से कह कर ग्रन्थो की भापा टीका लिखवाते और फिर ग्रन्थ का शैली में वाचन करते। हीरानन्द कवि द्वारा जिन परि-स्थितियो में पचास्तिकाय की भाषा लिखी गई उसका ग्रन्थ प्रशस्ति मे विस्तृत वर्णन किया गया है .—

अब सुनि जैसे भाषा रचना, भई नवीन पुरातन खचना।
नगर आगरा सब विधि अगरा, लसै तहाँ नर नागर सगरा।
तामैं अगरवाल कुल सोहै, सगही अभैराज जन मोहै।
बडा धनी परगट जग सारै, जहागीर के राज विचारै ॥ 1105 ॥

ताकै बनितागन में पतनी, मोहनदे सब विधि गुन जतनी।
लछमी रूप लसै अवतारी, सब परियन मैं जन मन हारी ॥ 1054 ॥

ताका पूत भया जग नामी, जगजीवन जिन मारग गामी।
जाफरखा के काज सभारै, भया दीवान उजागर सारै ॥ 1055 ॥

आतम निधि जिन पाई आछी, सकल काज मे बरतै साछी।
स्वपर विवेक अहो जिस भावै, स्याद्वाद जिन मारग जावै ॥ 1056 ॥

ता समीप इक पडित ज्ञानी, हीरानन्द पढै जिनवाणी।
ता करि ग्रन्थ परातन सुनिये, अध्यातम चरचा रस चुनिये ॥ 1057 ॥

जग जीवन जग जीवनि पालै, सहम्मी जन प्रीति निहालै।
एक दिवस साहम्मी जन मैं, बैठे हुते आगरे खन मे ॥ 1058 ॥

चरचा चली जु टीका कीजै, पचासति काया परतीजै।
तहा भगोतीदास है ग्याता, घणमल और मुरारि बिख्याता ॥ 1059 ॥

लागे कहन मनोरथ सरई, पडित हेमराज जो करई।
आगै प्रवचन भाषै कीनी, कवित बिना नर कहवति लीनी ॥ 1060 ॥

तैसे करि जो इह भी कहिये, तौ आतम सैली निरवहिये।
तब जगजीवन दास प्रवीना, बोल्या वचन स्वपर रस भीना ॥

कवित रूप से रचना होई तौ सुनि सुख पावै सब कोई।
पडित हीरानन्द प्रवीना, कबित कला अनुभो रस भीना ॥ 1062 ॥

थोरे दिन में पूरन करि है, अमृतचन्द कृत अखउ धरि है।
अैसे कहि करि मन मैं राखी, ग्रन्थ सपूरन हुये है भाखी ।। 1063 ।।

कितेक दिन मैं तह तै आये, साह जहानाबाद सुहाये।
तहाँ मिल्या सगही हितकारी, मथुरादास मिलायी भारी ।। 1064 ।।

रावणिया परसिद्ध कहावै, सबै जीव को सुख उपजावै ।
तासो मिलि करि चरचा करिये, स्वपर विवेक हिय मैं धरिये ।। 1065 ।।

एक दिवस इहु बात चलाई, ग्रन्थ करन को विधि ठहराई।
पडित हीरानन्द प्रति बोले, अपने जिय के मनरथ खोले ।। 1066 ।।

पचासति काया को कहिये, टीका तापरि जसो गहिये।
दोहा आदिक भापा कहना, थोरे मैं कछु बहुत निवहना ।। 1067 ।।

बहुत बढाव कछु नहिं करना, कुन्दकुन्द का अनुभौ धरना।
पचम काल विषइ बुधि थोरी, ता पर विषय मगनता ढोरी ।। 1068 ।।

वार वार करि गुरु समुभावै, तौ बनत न कहियै मै आवै।
तातै कुछ इक सूधा कहना, पचासतिकाय निरबहना ।। 1069 ।।

अैसे कहि कहि हित उपजाया, ज्ञानी जन के हिये सुहाया।
तब पडित कवि जन मन भाई, कहत हितूपे हित सुखदाई ।। 1070 ।।

बडा काज इहु आतम केरा, जाके कहत सुपर सुरभेरा।
जिन परि निमित मिले निज काजा, किया नाहि तिन दुहु जग लाजा ।।
।। 1071 ।।

जे निज परकारन तै सुरभै, ते जग माहि रहत नहि अरुभै ।।
तातै बडा काम है एता, स्वपर निमित तै चेतन चेता ।। 1072 ।।

चितवन को पचासति काया, जामै सब जग भाव समाया।
ताका अनुभौ करवे लाइक, जो कछु एसे जोग जुराइक ।। 1073 ।।

तातै उतिम निमित बना है, सुनने को ए दोइ जना है।
बडे विचारक सबही विधि के, समुभन वाले आतम निधि के ।। 1074 ।।

जो जो दिन प्रति करिये कविता, सो सो इनसे पढिये सविता।
हीन अधिक जो कछु इक होई, तै चरचा मैं सुधरे सोई ।।1075 ।।

तातैं इहु सपूरन ग्रन्था, होई सकेगा शिव का पथा।
यातै याका कारण नीका, पढत सुनत मिथ्या दृग फीका ॥ 1076 ॥

ऐसी जानि जथा मति किया, जानपना अनुभौ रस पीया।
ग्रन्थ पुरातन कहवति नया, दोइ मास मो पूरन भया ॥ 1077 ॥

रचनाकाल—दोहरा—

सवत सत्राहसै भला, गिरहोतरा पलाव।
जेठ मास सित सप्तमी, पूरन भया कहाव ॥ 1078 ॥

सोरठा :—

पूरन भया कहाव, कहने का औरक नही।
कहने विषै लखाव, सोई लखि पूरन लखै ॥ 1079 ॥

सवैया इकतीसा.—

ज्ञान दृग विमल अमल कल लोकनि ते
लोक रु अलोक प्रतिबिब अवगत है।
जैसे कै मुकर परछाय प्रति छाप लसै
मुकर स्वपर घर परन वहत है।
ऐसा जिनराज मधि अत जिनराज पद
सब पद पूजि पूजि आतम महत है।
वीरनि मै वीर सिरि वीर जिन वारि लसै
ताही मैं समारहीर ग्रन्थ विकसत है ॥ 1080 ॥

सवैया तेईसा :—

वीर जिनातर मध्य भयो नृप विक्रम नाम महा सकबधी।
एक हजार सातसे ऊपर भूपर नाम चलावत सधी।
औ गिरहोतर जेठ महीने सातमि कावि प्रबधी।
हीर गरथ भया परिपूरन पूरन होहि सुने जग धधी ॥ 1081 ॥

दोहा .—

जग धधी ऊभे महा, फिरै जगत धघाल।
एक समै सूछिम समै, लहत लहै सिव चाल ॥ 1082 ॥

चौपाई .—

साह जहानाबाद नगर में, पूरन परमानन्द डगर में
पूरन भया गरंथ सुहाया, भविक लोक लोकनि मन भाया ॥ 1083 ॥

सवैया इकतीसा ·—

विमल विलोकनि विलोकि लोकि लोकनि,
सुनिज निज हिय रस बसते समारा है ।
कोटनि का कोट सूर ससि तेज छवि
नाना घर दरबार अटनि अटारा है ।
अनुप बजार साग अति ही विथार धार
मारतार कोई नांहि राजनीति धारा है ।
प्रगट जहानाबाद वादि साह साहजहा
मति गति रूचि पचि पचनि निवारा है ॥ 1084 ॥

दोहरा ·—

साह जहानाबाद में, भया पुरान पुरान ।
सब कुरान राजे जहाँ, साहजहाँ परधान ॥ 1085 ॥

सवैया इकतीसा—

चहु ओर सोर सुनि अरिनि की नारी
जन तन मन कपित रहत नित गेह मे ।
महाबली दली दल बले मले भले भले
गढ मढ ढाहि ढाहि कीने खिन केह मे ।
चित हित वितलेई लेई मिले जे जे नृप
ते ते दिन दिन सुखसुखिया सनेह मे,
हीर धरि वीरानी में वीर शाहजहां
जग लसै परिपूरन बदन नृप दे हमे ॥ 1086 ॥

सवैया इकतीसा—

याही बाद साह साहजहां वादसाही माहि
ग्रन्थ निरवाह किया हिया अवधार कै ।

पूरन अपूरव गरथ पथ देखि देखि
लेखि लेखि अलख लखाव अनुसारि कै।
भवनि को भव भ्रम भानिवे का भावधारा
सारा सुख मुख रूष दुखन निवारि कै।
हीर परमारथ अरथ करि सारथ है
भारथ है भारती का सुनिये विचारि कै ।। 1086 ।।

सवैया इकतीसा—

ज्यो ज्यो जन मन छेइ देइ लेह रस
रस वस होई खोई विमति निधान को।
त्यों त्यो सुख बढनि घटनि दु ख दुखनि की
भूखनि की भूपा भूषि सुख सुखवान को
सुरनर फनपतिनि,की शोभा को भलो भालो
भए इक शुद्ध आतम निदान को।
करम कलक पक अके परिहार करि
हीर निज रूप भूप पावे निरवान को ।। 1088 ।।

सवैया इकतीसा—

सबद अनादि तिन सकति अनादि ही की
अरथ अनादि सब सहज स्वभावतै।
किये न कराये काहू कर न करावे कोऊ
दोऊ नाना भेद पर कहन कहावते
यातै कहौ नूतन कहान कहा कहै
कवि भुवि परवाह वहै चलन चलावतै।
हीर समरस पान जानपना जान जान
पूरन लखाव स्यादवाद कै लखावतै ।। 1089 ।।

इति पचास्तिकाय प्रकरण भाषा पडित हीरानद कृत समाप्त ।।
सवत 1720 वर्षे वैशाख मासे कृष्ण पक्षे प्रतिपाद्दिने परमानदेन व्यलेख्य।

उक्त विस्तृत प्रशस्ति का सार निम्न प्रकार है:—

आगरा में अग्रवाल जातीय सगही अभैराज थे। वे बहुत बडे धनिक थे। उस समय जहाँगीर का शासन था। उनकी स्त्री का नाम मोहनदे था

जो सब स्त्रियों मे प्रमुख थी। उनके पुत्र का नाम जगजीवन था। वह जाफरखां का दीवान था। उनही के यहां प. हीरानन्द रहते थे। उनसे जगजीवन ग्रन्थो का सुना करते थे और आध्यात्मिक चर्चा करते रहते थे। जगजीवन के यहाँ साधर्मी बन्धु आते रहते थे। एक दिन जब वे सभी आगरा में बेठे हुये थे तो पचास्तिकाय की भाषा टीका करवाने की चर्चा चल पड़ी। वहाँ भगोतीदास, धरामल, मुरारि जैसे विख्यात पडित भी थे। सभी ने कहा कि हेमराज ने जिस प्रकार प्रवचनसार की भाषा टीका लिखी है उस प्रकार पचास्तिकाय की टीका भी उनके द्वारा हो सकती है। कवितामय यदि भाषा टीका होती है उसे सुनकर सभी आनन्दित होगें। पडित हीरानन्द प्रवीण पडित है और वे चाहे तो यह काम कर सकते हैं। इस प्रकार उन सब की इच्छा हुई।

कुछ दिनो बाद वे जहानाबाद आये। वहा सगही मथुरादास मिले उनका गवर्णियों वैक था। उनसे भी पचास्तिकाय की भाषा टीका करने की चरचा की गई। एक दिन उन्होने पं० हीरानन्द से भाषा टीका करने की बात चलाई और कहा कि टीका बहुत ही सक्षिप्त किन्तु सारगभित होनी चाहिये। पं हीरानन्द ने जगजीवन की प्रार्थना स्वीकार करली। वे प्रतिदिन भाषा टीका लिखते उसे सब लोग पढते। हीन अधिक यदि कही होता तो उसे चरचा मे सुधार देते और इस प्रकार संवत् 1707 जेठ सुदी सप्तमी को यह भाषा टीका पूर्ण हुई।

यह भाषा टीका जहानाबाद में पूरी हुई। उस समय देश पर बादशाह शाहजहां का शासन था जिसके भय मे शत्रुगण सदैव कपित रहते थे। पूरे ग्रन्थ मे 1089 छद हैं जिनमे दोहा, चौपाई, सवैया आदि हैं। कवि ने 181 गाथाओं की भाषा टीका लिखी है जो आचार्य जयसेन की तात्पर्यवृत्ति के अनुसार है। प्रत्येक गाथा पर कम से कम एक दोहा, एक सवैया एवं एक दोहा लिखा है। लेकिन 181 गाथाओं का पद्य मय अर्थ 949 छदो मे पूरा हुआ है। इसके पश्चात द्रव्य गुण पर्याय स्वरूप का कथन किया है। कवि ने अमृतचन्द्र की पचास्तिकाय की टीका को उद्यान के समान माना है —

उद्यान विधि टीका कीनी मद अनुमान सूक्ष्म रस भीनी।
मध्य मनोहर अरथ करि गहरी, कुन्दकुन्द अनुभौ रस भरी ॥ 1048 ॥

'प्रस्तुत भाषा टीका अभी तक अप्रकाशित है और सर्वथा प्रकाशन योग्य है।

2. पचास्तिकाय—पाण्डे हेमराज'—

हिन्दी भाषा मे निबद्ध यह टीका सबसे प्राचीन है। यह गद्य में है तथा मूल ग्रन्थ के अर्थ को बहुत ही सरल भाषा में समझाया गया है। पडित परमानन्द शास्त्री एव डा. प्रेमसागर दोनो ने पचास्तिकाय भाषा टीका का रचनाकाल सवत् 1721 लिखा है लेकिन रचनाकाल सूचक पद्य का दोनो ने उल्लेख नही किया है। जयपुर के ठोलियो के मन्दिर मे सग्रहित एक पाण्डुलिपि सवत 1719 की लिखी हुई है इसलिये पचास्तिकाय गद्य टीका का लेखनकाल सवत 1721 तो नही हो सकता। स्वय गद्य टीकाकार में रचनाकाल का कोई उल्लेख नही किया है। पाण्डे हेमराज ने निम्न प्रकार टीका की समाप्ति की है :—

आगे इस ग्रन्थ का करणहारे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने जु यह आरम्भ कीना था तिसके पार प्राप्त हुआ कृतकृत्य। अवस्था अपनी मानी कर्म रहित शुद्ध स्वरूप विषै थिरता भाव धर्या। असी हमारे विषै भी श्रद्धा उपजी इसी पचास्तिकाय समयसार ग्रन्थ विषै मोक्षमार्ग कथन पूर्ण भया। यह कुछ एक अमृतचन्द्र कृत टीका तै भाषा बालबोध श्री रूपचन्द गुरु के प्रसाद थी। पाडे हेमराज ने अपनी बुद्धि माफिक लिखित कीना। जे बहुश्रुत है ते सवारि कै पढियो ॥

इति श्री पचास्तिकाय ग्रन्थ पाडे हेमराज कृत समाप्त। सवत् 1719 पौष सुदि 11 बृहस्पतिवार रामपुरा मध्ये लिखायित[1] पचास्तिकाय ग्रन्थ सघही कला परोपकाराय लिखित लेखक दीना। शुभ भूयात।

ग्रन्थ के प्रारम्भ करते समय कवि ने अपना कोई परिचय नही दिया है और टीका को प्रारम्भ कर दिया है।

---

1 राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची—भाग-3 पृष्ठ 181

भावार्थ —

एक परमाणु विषै पुद्‌गल के बीस गुणनि मे पच गुण पाइये। पच रसनि विषै कोई एक रस पाइए। पच वर्ण विषै कोई एक वर्ण पाइए। दोइ गंध विषै कोई एक गध पाइए। शीत स्निग्ध, शीत रूक्ष उष्ण, स्निग्ध उष्ण-रूक्ष इति चार स्पर्श कै जुगलनिविषै एक कोई जुगल पाइए। ए पच गुण जाननं। यह परमाणु षध भाव कै परणाया हुआ शब्द पर्याय का कारण है। और जब षध तै जुदा है तब शब्द तै रहित है। यद्यपि अपणे स्निग्ध रूक्ष गुणानि का करण पाइ अनेक परमाणु रूप-स्कध परिणिति धरि करि एक हो है तथापि अपणे एक रूप करि स्वभाव कौ छोडता नाही। सदा एक द्रव्य है।

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि हेमराज हिन्दी गद्य लेखन मे बडे कुशल विद्वान थे। तथा सिद्धान्त एवं दर्शन के विषय को भी धारा प्रवाह लिखते थे। आगरा के होने के कारण उनकी भाषा में थोडा व्रज भाषा का पुट है।

3. पंचास्तिकाय भाषा—बुधजन

19वी शताब्दी के कवि बुधजन ने पचास्तिकाय भाषा को सवत 1892 मे आसोज सुदी 10 के दिन समाप्त की थी, इसमे 582 पद्य है। यद्यपि यह पचास्तिकाय का पद्यानुवाद ही है लेकिन कवि की अपनी मौलिकता के भी दर्शन होते है। ग्रन्थ की भाषा 582 पद्यो मे पूर्ण होती है। इस ग्रन्थ की रचना मे जयपुर के तत्कालीन दीवान अमरचन्द जी की प्रेरणा ने विशेष कार्य किया जिसका कवि ने रचना के अन्त में सादर उल्लेख किया है।

सगही अमरचन्द दीवान योकू कही दयावर आन।
शब्द अर्थ यो मैं बह्यो, भाषा करन तबै उमगयो॥

पचास्तिकाय की भाषा एव आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है —

चौपई

बंदू जिन जित भव अति दुष्ट वाक्य विशद त्रिभुवन हित सिष्ट।
अतर हित धारक गुन वृन्द, ताके पद वंदित सत इद॥

भुवनवास सुर हरि चालीसा, व्यतर देवनिमैं वत्तीसा ।
कल्पवास चोबीसू जाहर, चद सूर चक्री फुनि नाहर ॥ 2 ॥

अनादि चतुर गति मय ससार, राग दोष मो कारन धार ।
तातें उपजे अति वसु कर्म, तिनकू जीतैं जिनवर पर्म ॥ 3 ॥

ताका वदन मगलचार, और देव जुत राग विकार ।
जिनवानी भय गुन की धार, ताका कथन सुनौ विस्तार ॥ 4 ॥

जन्म मरन यज दोष अपार, हरन उपाय कहे हितकार ।
कर्कसादि दूसन विन बैंन, मिष्ट लगे त्रिभुवन कु अेन ॥ 5 ॥

ससे विभ्रम मोह का कोय, याते विसद वाक्य जिन जोय ।
अतर हित केवल गुन ताहि, काल क्षेत्र मरजाद न जाहि ॥ 6 ॥

मेटि दिया भव भूमन अपार, भये कृत्य कत तजि ससार ।
महिमो मुख तैं कही ना जाय, थके धारि आनी मुनिराय ॥ 7 ॥

शरमण मुखते अपजी वानि, चहुगति हरण करण निरवान ।
नमू ताहि मन वच सिर नाय, वरनौ सुनि पचासितकाय ॥ 8 ॥

कुन्दकुन्द मुनि प्राकृत कीनी, अमृतचद्र सस्कृत रचि दीनी ।
हेमराज वचनिका करी, तापे बुधजन बुधि विस्तसी ॥ 9 ॥

अन्तिमपाठ—

पराकरत कुन्दकुन्द वरवानी, ताका रहस अमृतचद जानी ।
टीका रची सहसकृत वानी, हेमराज वचनका आनी । 577 ॥

को सम्यक्त मिथ्यातम हरे, भवसागर लीला ते तरे ।
महिमा मुख ते कही न जाय, वुधजन वेदे मन बच काय ॥ 578 ॥

सगही अमरचद दीवान, मोकू कही दयावर आन ।
पचास्तिकाय की भापा करो, तो अघ हरो धर्म विस्तरो ॥ 579 ॥

मनालाल फुनि नेमीचद, सहस किरत पायक गुन वृन्द ।
शक अर्थयन सौ मै लह्यो, भाषा करन तवे उमगह्यो ॥ 580 ॥

भक्ति प्रेरित रचना आनी, लिखो पढो वाचो भवि ज्यानी ।
जो कहु यामें उसुध निहारो, मूलग्रन्थ लखि ताहि सुधारो ॥ 581 ॥

रामसिह नृप जयपुर वसे, सुदि आसोज सुद दिन दशे ।
उगणीसे मै घटि है आठ, ता सवत यौ रचयो पाठ ॥ 582 ॥

इति पचास्तिकाय ग्रन्थ मूल भाषा सहित सपूर्ण । पाण्डुलिपि-शास्त्र भण्डार दि जैन मन्दिर दीवान वधीचन्द जयपुर ।

समयसार

आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार विगत दो हजार वर्षो से सबसे अधिक चर्चित ग्रन्थ रहा है। ऐसा लगता है जिसने समयसार का स्वाध्याय नही किया उसने जैन कुल पाने पर भी उसे व्यर्थ ही गवा दिया। समयसार का यदि एक ओर सभी आचार्यो एव साधुओ ने गहन अध्ययन एव स्वाध्याय किया तो दूसरी ओर भट्टारको ने इस महान् ग्रन्थ का सूक्ष्म अध्ययन ही नही किया किन्तु उसकी पचासो पाण्डुलिपिया लिखवाकर शास्त्र भण्डारो मे सग्रहित करने मे भी सफलता प्राप्त की। बडे-बडे राज्याधिकारी एव दीवान जब शासन से ऊब जाते तो समयसार का अध्ययन किया करते थे। जयपुर के बधीचन्दजी के मदिर के शास्त्र भण्डार में समयसार की ऐसी दो पाण्डुलिपिया है जिन्हे जयपुर राज्य के दीवान श्योजीराम ने अपने पुत्र अमरचन्द के पढने के लिये लिखवायी थी। इसके पश्चात् जब अमरचन्द स्वय दीवान बने तो उन्होने भी अपने स्वाध्याय के लिये समयसार की प्रतिलिपि करवाई।[1]

आचार्य कुन्दकुन्द के इस ग्रन्थ का नाम समयपाहुड है। उन्होने स्वय ने ग्रन्थ की प्रथम गाथा में "वोच्छामि समयपाहुडमिण" कहा है और ग्रन्थ की अन्तिम गाथा मे भी "जो समयपाहुडमिण" ग्रन्थ का नाम समय पाहुड दिया है इससे यह तो सिद्ध होता है कि समयसार का मूल नाम समयपाहुड है। यह नाम सोद्देश्य है। तीर्थकर महावीर की वाणी द्वादशाग में मुद्रित है इनमें बारहवें अग का नाम दृष्टिवाद है उसमे चौदह पूर्व है इसमे पाचवे पूर्व का नाम ज्ञान प्रवाद है उसमे बाहर वस्तु अधिकार है उनमे दसवे वस्तु अधिकार मे समय पाहुड है।[1]

समय का अर्थ आत्मा है और सार का अर्थ है शुद्ध स्वरूप इसलिये समयसार का अर्थ हुआ आत्मा के शुद्ध स्वरूप का कथन। समयसार ग्रन्थ में समयसार शब्द का प्रयोग भी तीन बार हुआ है इस अपेक्षा से भी इस

---

1 राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग-तीन पृष्ठ सख्या 93

2 समयसार—कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन—पृष्ठ सख्या-6

ग्रन्थ का नाम समयसार अधिक लोकप्रिय हो गया। इसके अतिरिक्त कुन्दकुन्द के प्रवचनसार एव नियमसार के नामो में जो सरलता है उस आधार पर भी समयसार नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया ।[2]

समयसार मे दस अधिकार है जिनके नाम है जीवाधिकार, जीवाजीवाधिकार कर्त्ताकर्माधिकार, पुण्यपापाधिकार, आस्रवाधिकार, सवराधिकार, निर्जराधिकार, बधाधिकार, मोक्षाधिकार एव सर्वविशुद्ध ज्ञानाधिकार। विषय का सामान्य ज्ञान तो अधिकारो के नामो से ही हो जाता है। दसवा अधिकार स्वय आचार्य कुन्दकुन्द का न होकर आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा अभिहित है।

समयसार अध्यात्म विषय का सर्वोत्तम ग्रन्थ है। सम्पूर्ण जैन वाड्मय में इस ग्रन्थ की कोटि का और कोई ग्रन्थ नही है। क्योकि इस ग्रन्थ में समस्त पदार्थो अथवा आत्मा का सार वर्णित है। यह भेद विज्ञान का निरूपण करता है। उपादेय पदार्थो का ग्रहण करके अन्य समस्त पदार्थो को उपेक्षित कर देना यही भेद विज्ञान का प्रमुख लक्षण है। समयसार में निश्चय नय को मुख्यता से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वर्णन किया गया है। कई स्थानो पर व्यवहार और निश्चय दोनो ही नय पक्षो का मत प्रस्तुत किया गया है। व्यवहार एव निश्चय नय की भिन्नता एव अभिन्नता को समयसार को 76 गाथाओ 37 में दृष्टान्तो द्वारा समझाया गया है। यहा एक उदाहरण प्रस्तुत है—

इणमण्णा जीवादो देह पोग्गलमयं थुणित्तु मुणि।
मण्णत्ति हु सथुदो वदिदो मय केवली फयब ।। 1-28 ।।

त णिच्छमे ण जुञ्जदि ण सरीरगुणा हि होति केवलिणो।
केवलगुणो थुणदि जो सो तच्च केवलि थुणदि ।। 1-29 ।।

अर्थात जीव से भिन्न इस पुदगलमय देह की स्तुति करके मुनि ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवान की स्तिुति की और वन्दना की। लेकिन वह स्तुति निश्चय नय में उचित नही है क्योकि शरीर के शुक्ल कृष्णादि

---

1. वही

गुण केवली भगवान के नही होते। जो केवली भगवान के गुणो की स्तुति करता है वह परमार्थ से केवली भगवान की स्तुति करता है इसी तरह आगे भी इस समयसार में व्यवहार और निश्चय का निम्न प्रकार लक्षण बतलाया है —

व्यवहार नय—आयारादी णाण, जीवादी दसण च विण्णेय।
छज्जीवणिक च तहा भणादि चरित्त तु ववहारो ॥
॥ 8-40-276 ॥

आचाराग आदि शास्त्र ज्ञान है, जीवादि तत्व दर्शन जानना चाहिये और छह जीवनिकाय चरित्र है इस प्रकार तो व्यवहार नय कहता है।

निश्चयनय—आदा खु मज्झ णाण आदा मे दसण चरित्त च।
आदा पच्चक्खाण आदा मे सवरो जोगो ॥ 8-41-279 ॥

अर्थात् निश्चय नय से मेरी आत्मा ही ज्ञान है, मेरी आत्मा ही दर्शन और चारित्र है, मेरी आत्मा ही प्रत्याख्यान है और मेरी आत्मा ही सवर है और योग है—यह निश्चय नय का कथन है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने समय पाहुड (समयसार) ग्रन्थ के महात्म्य का निम्न प्रकार वर्णन किया है :—

जो समयपाहुडमिण पढिढ़ूण य अत्थतच्चदो णादु।
अत्थे सही ठाहिदि चेदा सो होहि उत्तम सोक्ख ॥ 10-108-415 ॥

अर्थात् जो भव्यात्मा इस समयप्राभृत को पढकर और इसे अर्थ और तत्व से जान कर अर्थभूत शुद्धात्मा में ठहरेगा यह उत्तम सौख्य स्वरूप हो जावेगा।

समयसार का सार

समयसार– समयसार मे जीव और अजीव के स्वरूप का दिग्दर्शन कराया गया है। जीव के ससार भ्रमण का कारण एव उससे मुक्त होने का उपाय बतलाया है। ससार भ्रमण का मुख्य कारण जीव की अज्ञान अवस्था मानी है। जीव निज–स्वरूप को भूलकर निज स्वभाव में नही रहता तथा निज मे न रहना उसका सबसे बडा अपराध है निज में न

रहकर वह मिथ्या बुद्धि के कारण परासक्त हो रहा है। परासक्ति का नाम ही राग है तथा मिथ्या बुद्धि का कारण दर्शन मोह है और यह दर्शन मोह ही ससार भ्रमण का मुख्य कारण है। दर्शन मोह का अर्थ मिथ्यात्व है, आत्मा के ज्ञान और दर्शन गुणो पर ऐसे आवरण का होना, जो जीव के सत्य और असत्य का निर्णय होने में बाधा उपस्थित करता है, जो निज स्वरूप का ज्ञान भी नही होने देता। जिस प्रकार शराब के तीव्र नशे में मनुष्य स्वय को, स्वय के घर को, स्वय के परिवार को भी भूल जाता है, उसी प्रकार दर्शन मोह के कारण जीव निज-स्वभाव, निज-गुण व निज-अस्तित्व को भी भूला हुआ है। यह भूल अनादि काल से ही चल रही है। इस रहस्य को आचार्य कुन्दकुन्द ने खोल कर समझाया है उन्होने जीव का स्वरूप समझाते हुये लिखा है :—

अरसमरूवमगध सव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण आलिग्गहण जीवमणिद्दिट्ठ सठाण ।। 2-11 ।।

अर्थात जीव रूप, रस, गध और स्पर्श व शब्द से रहित है। वह इन्द्रियो से नही जाना जा सकता, इसलिये अव्यक्त है। वह चेतन द्रव्य है। न तो उसका आकार निश्चित है और न किसी चिह्न से परिलक्षित है।

अहमेक्को खलु शुद्रो दसणणाणमइओ समारूवी ।
ण वि अत्थि मज्झ किंचि वि अण्णपरमाणुमेत्त पि ।। 1-38 ।।

निश्चय ही जीव एक स्वतत्र अस्तित्व वाला है तथा ज्ञान और दर्शन गुण वाला है। आत्मा अरूपो है, पुद्गल का एक भो कण जीव का नही है।

निजस्वरूप और पदार्थो के स्वरूप ज्ञान के विना भेदज्ञान उत्पन्न नही हो सकता। अतः कुन्दकुन्द स्वामी ने स्वरूपज्ञान करवाकर क्रोधादिक सम्पूर्ण भावो को पर भाव माना है। उन्होने कहा है कि स्वर्ण से ही स्वर्ण के आभूषण बन सकते हैं, लोहे से नही। आत्मा का शुद्र रूप ज्ञानमय है, क्रोधादिक ज्ञानमय भाव नही है। आत्मा का शुद्ध परिणमन जानना और देखना है। क्रोधादिक भाव स्वय विकार है अत पुदगल हैं। विकार की उत्पत्ति विकारी पदार्थ से होती है अत· शुद्ध निश्चय नय से क्रोधादिक भाव शुद्ध आत्मा का परिणमन नही है।

लेकिन आत्मा की अशुद्ध अवस्था में क्रोधादिक भाव आत्मा का परिणमन है। जिस प्रकार तीव्र गर्म लोहे के गोले को आग का गोला कह दिया जाता हैं उसी प्रकार क्रोध अवस्था में आत्मा क्रोधमय कहा जाता है। लेकिन अग्नि और लौह भिन्न-भिन्न पदार्थ ही है उसी प्रकार आत्मा और क्रोध भिन्न वस्तु है। लेकिन अज्ञानी जीव आत्मा और क्रोधादिक भावो को भिन्न-भिन्न नही देख पाता अत. वह क्रोधादिक भावो को निज भाव मानता है, इस एकत्व बुद्धि के कारण ही अज्ञानी आत्मा ससार भ्रमण करता है तथा पर पदार्थो व परिभावो को निज मानने के कारण उन भावो से बन्धन में रहता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने ज्ञानी का लक्षण लिखते हुये कहा है '—

कम्मस्स य परिणाम णोकम्मस्स तहेव परिणाम।
ण करेदि एवमादा जो जाणदि सो हवदि णाणी ॥ 3-7 ॥

जो आत्मा ज्ञानावरणादि जो कर्म शरीर के परिणामो को निज न मानकर उनका अपने आपको केवल ज्ञाता मानता है। वह ज्ञानी हैं। इस बात को आचार्य अमृतचन्द्र ने निम्न प्रकार समझाया है —

आत्मा ज्ञान स्वय ज्ञान, ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽय व्यवहारिणाम् ॥

वस्तु स्थिति ऐसी है आचार्य कहते हैं —

उत्पादेदि करेदि य बन्धदि परिणामएदि गिण्हदिय।
आदा योग्गलदव्व ववहारणयस्स वत्तव्व ॥ 3-39-107 ॥

आत्मा पुद्गल द्रव्य को उत्पन्न करता है, करता है बाधता हैं। परिणमन कराता है, और ग्रहण करता है, यह सब व्यवहार नय का कथन है ॥

इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार मे आत्मा का स्वरूप समझाकर पुद्गल के जीव का भेदज्ञान करवाया है। तथा जीव और पुद्गल को स्वतन्त्र सत्तात्मक व गुणात्मक बतलाकर कहा है कि वे किंचित मात्र भी परापेक्षी नही है।

कर्मबन्धन—का कारण मिथ्यात्व, अविरमण, कषाय और योग है। मिथ्यात्व के कारण जीव पर द्रव्य और पर भावो में निज भाव-राग भाव करता है, राग का अर्थ ही बन्धन है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि आत्मा का इष्ट स्वय आत्मा ही है, पर के एक कण मे भी राग बुद्धि सत्य से परे है इस तथ्य में जब तक श्रद्धान न हो तब तक जीव की पर मे रागबुद्धि बनी रहती है।

जाव ण वेदि विसेसंतरं आदासवाणदोण्ह पि।
अण्णणी ताव दु सो कोहादिसु वट्टदे जीवा ।। 3-1 ।।

कोहादिसु वट्टतस्स तस्स कम्मस्स सचओ होदि।
जीवस्सेव बन्धो मणिदो खलु सव्वदरसीहि ।। 3-2 ।।

जब तक जीव को आत्मा और आस्रव के कारण राग द्वेषादि भावो के पृथकत्व का ज्ञान नही होता तब तक यह जीव क्रोधादिक के पर भाव होने पर भी उनमें निजैकत्व भाव से बर्तता है, ऐसी स्थिति में उसके कर्मबन्ध होता है ऐसा सर्वदर्शी वीतरागी भगवान ने कहा है।

कमरे में जब अग्नि जलती, है तब कमरा अवश्य गर्म होता है, लेकिन अग्नि के निमित्त से कमरा गर्म हुआ, स्वय कमरे में गर्म होने की योग्यता नही है, उसी प्रकार क्रोध कर्म के उदय होने पर क्रोध उत्पन्न होता है आत्मा में क्रोध करने की योग्यता नही है। आत्मस्थित रहने वाला क्रोध का ज्ञाता बनकर रहता है, कर्ता नही। आत्मस्थित रहने वाले के बद्ध कर्म बिना फल दिये ही निर्जरित हो जाते है अत. क्रोध सामग्री ही नही रहती। और कदाचित आत्मास्थिति न रहे और क्रोध उदय में आ जावे तब वह यह विचार करता है कि यह कर्मोदय का फल है, स्वय (आत्मा का) परिणमन नही है।

इस प्रकार कर्मबन्ध का कारण समझते हुये कुन्दकुन्द आचार्य ने राग द्वेष के भावो को आस्रव और बन्ध कारण तथा आत्मस्थिति को कर्म निर्जरा का कारण बतलाया है।

ससार से मुक्त होने के भाव और तद्रूप आचरण मुक्ति प्रदान करते है तथा बन्ध और आत्मा के स्वभावो को जानकर जो बन्ध के कारणो से विरक्त होता है वह कर्मो से मुक्त होता है।

समयसार पर सस्कृत टीकायें

समयसार पर सस्कृत भाषा मे अब तक निम्न टीकाये उपलब्ध हुई है :—

1. अमृतचन्द कृत—आत्मख्याति टीका
2. अमृतचन्द कृत—समयसार कलश
3. जयसेनाचार्य—तात्पर्य वृत्ति
4. भ० शुभचन्द्र—अध्यात्मतरगिनि
5. भ० देवेन्द्र कीर्ति—समयसार टीका
6. नित्यविजय—कलश टीका

समयसार—आत्मख्याति टीका

समयसार पर यह प्रथम सस्कृत टोका है जिसे आचार्य अमृतचन्द्र ने 10वी शताब्दी में लिखी थी । आचार्य अमृतचन्द्र के पूर्व 800-900 वर्षों तक किसी भी आचार्य द्वारा निर्मित टीका नही लिखा जाना भी कुछ आश्चर्य सा लगता है । डा० नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य के शब्दो मे सारस्वताचार्यो में टीकाकार अमृतचन्द्र सूरि का वही स्थान है जो स्थान सस्कृत काव्य रचयिताओ में कालिदास के टीकाकार मल्लिनाथ का है । कहा जाता है कि यदि मल्लिनाथ न होते तो कालिदास के ग्रन्थो के रहस्य को समझना कठिन हो जाता उसी तरह यदि अमृतचन्द्र सूरि न होते तो आचार्य कुन्दकुन्द के रहस्य को समझना कठिन हो जाता अतएव कुन्दकुन्द के व्याख्याता के रूप में अमृतचन्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है ।[1]

समयसार टीका का नाम आत्मख्याति है जो समयसार जैसे आत्मा के सार को बतलाने वाले ग्रन्थ की टीका की आत्मख्याति एकदम यथार्थ नाम है । टीका में अमृतचन्द्र ने गाथा के शब्दो का व्याख्यान न करके उसके अभिप्राय को अपनो परिष्कृत गद्य शैली में व्यक्त किया है यही नही जहा कुन्दकुन्द के ग्रन्थो मे प्रमेय अस्पष्ट थे वहा कलश आत्मख्याति टीका द्वारा स्पष्ट करके जैन तत्वज्ञान को समृद्ध किया है ।

---

1 तीर्थंकर महावीर औ उनकी आचार्य परम्परा—पृ० 402, भाग-2

आत्मख्याति टीका में समयसार को 415 गाथाये बतलाई गई है। तथा समयप्राभृत नाम को समयसार में परिवर्तित भी इसी टीका में किया गया है। इसी टीका के कारण समयसार का नाम अधिक लोकप्रिय बन सका। टीका को नाटक के समान अंको में विभाजित किया है जिस प्रकार नाटक में पात्रो का निष्क्रमण और प्रवेश होता है उसी प्रकार यहां भी प्रवेश एव निष्क्रमण कराया गया है। प्रथम जीवाधिकार की समाप्ति पर टीकाकार अमृतचन्द्र ने निम्न शब्दो के साथ अधिकार को समाप्त किया है —

इति श्री समयसार व्याख्यायामात्मख्यातौ पूर्वरग समाप्तः। टीका शोशे के समान है जिसमें समयसार के पूरे भाव देखे जा सकते एव पढे जा सकते है उनका गूढार्थ समझा जा सकता है। यहा एक गाथा और उसकी टीका पाठको के अवलोकनार्थ दी जा रही है :—

ण वि परिणमदि ण गिहृणदि उपज्जदि ण परदव्वपज्जाए।
णाणी जाणतो वि हु योग्गलकम्मफलअणंत ।। 78 ।।

यतो य प्राप्य विकार्यं निर्वर्त्यं च व्याप्यलक्षण सुखदु खादिरूप पुद्गलकर्मफल कर्म पुद्गल द्रव्येण स्वयमंतर्व्यापिकेन भूत्वादिमध्यातेषु व्याप्यतद्गृह्लता तथा परिणमता तथोत्पद्यमानेन च क्रियमाण जानन्नपि हि ज्ञानी स्वयमतर्व्यापको भूत्वा बहिःस्थस्य परद्रव्यस्थ परिणाम मृत्तिका-कलशमिवादि मध्यातेषु व्याप्य न त गृहणाति न तथा परिणमति न तथो-त्पद्यते च। ततः प्राप्य विकार्यं निर्वय निर्वत्य च व्याप्यलक्षण परद्रव्यपरि-णाम कर्माकुर्वाणस्य सुखदु खादि रूप पुद्गलकर्मफल जानतोपि ज्ञानिनः पुद्गलेन सह न कर्तृ कर्मभावः ।। 78 ।।

आचाय अमृतचन्द ने समयसार की आत्माख्याति टीका मे 415 गाथाओ की टीका लिखने के पश्चात एक परिशिष्ट और लिखा है जिसका प्रथम पद्य निम्न प्रकार है जिसमें परिशिष्ट लिखने का उद्देश्य बतलाया गया है।

अत्र स्याद्वाद शुद्धयर्थं वस्तुतत्वव्यवस्थितिः।
उपायोपेयभावश्च मनाक् भूयोऽपि चित्यते ।।

अर्थात इस अधिकार मे स्याद्वाद की शुद्धि के लिये वस्तु तत्व का विचार किया गया है तथा एक ही ज्ञान में उपाय भाव और उपेयभाव कैसे बनते हैं इसका भी विचार किया गया है ।

अन्त में अमृतचन्द्र ने अपनी आत्मख्यति टीका को निम्न पद्य के साथ समाप्त की है —

स्वशक्ति ससूचित वस्तुतत्वै व्याख्या कृतेय समयस्य शब्दै ।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदास्ति कर्त्तव्यमेवामृतचद्रसूरेः ॥ 2 ॥

पाण्डुलिपियाँ :—

समयसार आत्मख्याति टीका की सैकडो पाण्डुलिपिया राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे सग्रहित हुई मिलती है। आत्म ख्यातिवाली टीका की सवत् 1449 मे लिखी प्राचीनतम पाण्डुलिपि लिपि की हुई जयपुर के दिग-म्बर जैन मन्दिर बडा तेरह पथियान के शास्त्र भण्डार में सग्रहित है।[1] सवत् 1463 की एक अन्य प्रति भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अजमेर मे सग्रहित है।[2] नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में आत्मख्याति टीका को सवत 1509, 1525 एव 1552 की पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती है।[3]

समयसार कलशा —

आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार पर आत्मख्याति टीका लिखने के पश्चात् प्राकृत गाथाओ के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने और याद रखने के लिये सस्कृत के सुन्दर भावपूर्ण पद्यो (श्लोको) को भी रचा है। इन पद्यो में शुद्ध आत्मा का ऐसा सुन्दर वर्णन किया है कि पाठक एव श्रोता दोनो भाव विभोर हो जाते हैं। इसलिये इन पद्यो को कलश कहा जाता है। जैसे मन्दिर पर चढा हुआ कलश दर्शको के चित्त को दूर से ही आकृष्ट कर लेता है, खीच लेता है उसी तरह समयसार रूपी मन्दिर पर रचे गये ये सस्कृत पद्य पाठक एव श्रोता दोनो को आकृष्ट कर लेते हैं।

---

1 राज के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग-2 पृ. 186
2 वही भाग-4 पृ. 223
3 भट्टारकीय ग्रन्थ भण्डार नागौर की सूची खड-3 पृष्ठ 40-41

वास्तव मे जिस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार जितना महान् ग्राह्य एवं सुखद है उसी प्रकार आचार्य अमृतचन्द्र का समयसार कलश भी महान् ग्राह्य एव सुखद है। समयसार कलश टीका का मगलाचरण निम्न प्रकार है :—

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥1॥
अनन्तधर्मणस्तत्व पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ॥2॥

कलश टीका एवं आत्मख्याति टीका का अंतिम पद्य एक ही है जो निम्न प्रकार है—

स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्वै व्याख्याकृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किञ्चिदस्ति, कर्त्तव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः ॥6॥

समयसार कलश मे 12 अधिकार हैं तथा इन अधिकारो में निम्न प्रकार 276 पद्य है।

1–पूर्वरंग (जीव अधिकार)	32
2–जीवाजीवाधिकार	13
3–कर्तृकर्माधिकार	54
4–पुण्यपापाधिकार	13
5–आस्रवाधिकार	12
6–संवाराधिकार	8
7–निर्जराधिकार	30
8–बन्धाधिकार	16
9–मोक्षाधिकार	13
10–सर्वविशुद्धयाधिकार	52
11–स्याद्वादाधिकार	17
11–साध्यसाधकाधिकार	16

अमृतचन्द्र ने समयसार कलश लिखने का प्रयोजन बतलाते हुये लिखा है:

परपरिणतिहेतो र्मोहनाम्नोनुभावाद—
विरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।

मम परमविशुद्धि. शुद्ध चिन्मात्रमूर्ते -
र्भवतु समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः ।।3।।

अमृतचन्द्र सूरि कामना करते हैं कि मुझको जो सर्वोत्कृष्ट विशुद्धि या निर्मलता हैं और जो शुद्ध स्वरूप में ही उपलब्ध है वह प्राप्त हो। समयसार या शुद्ध जीव की व्याख्या परमार्थ रूप वैराग्योत्पादक हैं अत समयसार का उपदेश करते हुये मुझे वैराग्य वृद्धि होकर शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो।

इस प्रकार समयसार कलश आत्म रस से भरा हुआ रस कूप है। ऐसा लगता है कि मानो आचार्य अमृतचन्द्र अपनी इस कृति के माध्यम से आत्मस्वरूप मे रमण करने का ही निमन्त्रण दे रहे है। स्वानुभव जैसी प्रेरणा इस ग्रन्थ में की गई है वैसी बहुत कम ग्रन्थो में मिलती ह।

समयसार–तात्पर्य वृत्ति

आचार्य जयसेन के समयसार पर जो गद्य टीका लिखी है वह तात्पर्यवृत्ति कहलाती है। आचार्य अमृतचन्द्र की टीका के कुछ ही वर्षो के पश्चात् निबद्ध यह सस्कृत गद्य टीका जैन साहित्य में उसी प्रकार प्रसिद्ध एव लोकप्रिय है जिस प्रकार अमृतचन्द्र की आत्मख्याति टीका। इसलिये जब कभी समयसार की टीकाओ का उल्लेख आता है तो अमृतचन्द्र एव जयसेन दोनो की टीकाओ का ही उल्लेख किया जाता है।

आचार्य जयसेन

डॉ. नेमिचन्द्र जैन ने[1] भगवान महावीर एव उनकी आचार्य परम्परा पुस्तक में दो जिनसेन का परिचय दिया है। प्रथम आचार्य जिनसेन वे है जिनकी आचार्य परम्परा विम्न प्रकार थी:

धर्मसेन
शातिसेण
गोपसेन
भावसेन
जिनसेन

जिनसेन ने अपने वश को योगीन्द्रवश लिखा है।[2] इन्होने धर्मरत्ना-

1 भगवान महावीर और उनकी आ परम्परा–पृष्ठ–139–40

2 वही पृष्ठ 140 भाग–तृतीय

कर ग्रन्थ को वि स 1055 सबलीकरहाटक नामक स्थान पर पूरा किया था ।[1]

प. परमानन्द जी शास्त्री ने जैनधर्म का प्राचीन इतिहास मे जयसेन नाम के 5 आचार्य गिनाये हैं जो निम्न प्रकार है :—

1 जयसेन—[2] 8 वी शताब्दी
2. जयसेन—[3] धर्मरत्नाकर ग्रंथ के निर्माता
3. जयसेन—[4] लाड वागड सघ के
4. जयसेन—[5] ,, ,,
5. जयसेन—[6] प्राभृत त्रय के टीकाकार

डॉ नेमिचन्द लाडवागड संघ के जयसेन एव धर्मरत्नाकर ग्रंथ के निर्माता जयसेन को एक ही जयसेन माना है । प. परमानन्द शास्त्री ने भी लाडवागड सघ के दो जयसेन गिना दिया लेकिन इन दोनो का परिचय समान है । इसी तरह पंडित जी ने धर्मरत्नाकर ग्र थ के निर्माता जयसेन को भी लाडबागड सघ का होना लिखा है । लेकिन उनके समय में एक शताब्दी का अन्तर माना है ।

प्राभृत त्रय के टीकाकार आचार्य जयसेन ने प्रवचनसार की टीका के अन्त में 4 पद्यो में अपना निम्न प्रकार परिचय दिया है :—

सूरि. श्री वीरसेनाख्यो मूलसघेपि सत्तया ।
नैग्रंन्थ पदवी भेजे जातरूप धरोपि य. ॥
तत: श्री सोमसेनोऽभूद गणी गुणगणाश्रय ।
तद्विनेयोस्ति यस्तस्मै जयसेन-तपोभृते ॥

---

1. बाणेन्द्रियव्योमसोम-मिते संवत्सरे शुभे ।
ग्रन्थोऽयं सिद्धतां यातः सबलीकरहाटके ॥
2 जैनधर्म का प्राचीन इतिहास — पृष्ठ संख्या 173
3. ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, 324
4 ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, 238
5 ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, 311
6 ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, 383

शीघ्र वभूव मालू साधुः सदा धर्मरतोवदान्यः।
सूनुमतः साधु महीपतिर्यस्तस्मादय चारूभटस्तनूज ॥
यः सतत सर्वविदः सपर्या मार्ग क्रमराधनया करोति।
स श्रेयसे प्राभृत नाम ग्र थ पुष्पत पितुर्भक्ति विलोपभीरू ॥

अर्थात् प्राभृतश्रय के टीकाकार आचार्य जयसेन वीरसेन के प्रशिष्य एव सोमसेन के शिष्य थे। सदा धर्म मे रत रहने वाले मालू हुये और उनके पुत्र महीपति हुये जिनके पुत्र जयसेन थे। उनका बाल्यकाल का नाम चारुभट था। ये साधु गोत्रीय खण्डेलवाल जैन श्रावक थे। यहा जो मालू एव उनके पुत्र महीपति के आगे साधू शब्द लिखा हुआ है वह उनके गोत्र का सूचक है। डॉ नेमिचन्द्रजी ने एव प परमानन्दजी दोनो ने साधू का अर्थ गलत दिया है। डॉ नेमिचन्द जी ने तो मालू नाम के साधू एव महपति साधू लिख दिया जबकि प परमानन्द जी ने मालू साहू एव महापति साधू लिखा है।

राजस्थान के दिगम्बर जैन पचायती मदिर पार्श्वनाथ जी सवाई-माधोपुर एव दिगम्बर जैन आदिनाथ मदिर टोडारायसिह मे सवत् 1586 के यत्र एव एक चौबीसीजी की प्रतिमा मिली है। जिसमे साधू गोत्र को खण्डेलवाल जाति का गोत्र लिखा है। दोनो लेख निम्न प्रकार हैं—

1 चौबीसी–पद्मासन। धातु पीतल। साढे छ. × तेरह

सवत् 1586 वर्षे फागुण सुदी 10 श्री मूलसघे नद्याम्नाये बलात्कार गणे सरस्वती गच्छे श्री कु दकु दाम्नाये भ श्री पद्मनन्दिदेवा तत्पट्टे भ. शुभचन्द्रदेवा तत्पट्टे भ. जिनचन्द्रदेवा तत्पट्टे भट्टारक प्रभाचन्द्रदेवा तत् शिष्य मडलाचार्य धर्मचन्द्र गुरूपदेशात तदाम्नाये खडेलवालान्वये साधू गोत्रे सा राधो तद्भार्या खणादे तत्पुत्र सा. रामदास... .... धर्मसी इद प्रणमति।

2. यत्र–अर्हंत–चौकोर। धातु–ताबा। अवगाहना 7×7 इच।

सवत् 1586 वर्षे फागुण सुदी 10 श्री मूलसघे कुन्दकुन्दाम्नाये भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवा तत्पट्टे भ श्री प्रभाचन्द्रदेवा तत् शिष्य मडलाचार्य श्री धर्मचन्द्रश्य तत् उपदेशात खण्डेलवालान्वये साधु गोत्रे सा गूजर तत् भार्या लखमी तत्पुत्र सा. भोमालाल, करमा, सा. नेमा भार्या नारगदे

लाडी तत्पुत्र माधौ रतन पाला लाल्हा भार्या दामा कमा भार्या करणादे तत्पुत्र ऊदा साधु गघा, नित्य प्रणमति ।

दोनो लेख एक ही तिथि के है लेकिन उनके प्रतिष्ठाता अलग-अलग है तथा एक यत्र है एव एक प्रतिमा है इसलिये यह सही है कि खण्डेलवाल जाति मे कभा साधु गोत्र था और इसी साधु गोत्र के आचार्य जयसेन थे ।

समय

आचार्य जिनसेन ने स्वय ने तो अपनी कृतियो मे समय का उल्लेख नही किया किन्तु उन्होने अपनी टीका ग्र थो में वीरनन्दि के आचारसार (4/95–96) के दो पद्य उद्धृत किये है । वीरनन्दि ने आचारसार पर शक सवत् 1076 (सन् 11 4) में कन्नड टीका लिखी थी इस आधार पर डा नेमिचन्द्र ने उनका समय सन् 1154 के बाद का माना है ।[1] डा. उपाध्याय ने जयसेन का समय ईसा की 12 वी शताब्दी का उत्तरार्ध एव विक्रम की 13 वो शताब्दी का पूर्वाद्ध निश्चित किया हैं । प. परमानन्द शास्त्री को जयसेन का समय 13 वी शताब्दी का प्रारम्भ ठीक लगता है ।

जयसेन द्वारा प्रतिष्ठित मूर्ति

अभी स्वय लेखक खण्डेलवाल जैन समाज के इतिहास की सामग्री सकलन के लिये जब 1988 में अलवर गया था तो वहा दिगम्बर जैन अग्रवाल पचायती मन्दिर मे एक मूर्ति पर अकित सवत् 1144 का लेख मिला है ।[3] मूर्ति लेख के अनुसार यह प्रतिमा स्वय आचार्य जयसेन द्वारा प्रतिष्ठित है । इस मूर्ति लेख के आधार पर आचार्य जयसेन के निश्चित समय के बारे मे कुछ कहा जा सकता है । इसलिये आचार्य जयसेन का समय विक्रम की 12 वी शताब्दी (सवत 1100 से 1180 तक का निश्चित किया जा सकता है)

आचार्य जयसेन की निम्न कृतियां उपलब्ध होती हैं:—

1. समयसार—तात्पर्यवृत्ति

---

1 तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा-भाग 3 पृ० स० 142–43
2. जैनधर्म का प्राचीन इतिहास–प० परमानन्द शास्त्री–पृ०284
3. लेख सम्वत् ११४४ पौष बुदी ११ पण्डित श्री जयसेनाचार्य अर्जिका 105-सम्भूराज विम्बकारापितेय ।

2 प्रवचनसार—तात्पर्य वृत्ति
3. पचास्तिकाय—तात्पर्य वृत्ति

जयसेन की उक्त तीन ग्र थो की टीकाम्रो के अतिरिक्त और कोई कृति अभी तक उपलब्ध नही हो सकी है। लेकिन ये टीकाये ही उनके गम्भीर सैद्धान्तिक ज्ञान को प्रकाश में लाने के लिये पर्याप्त है।

३ समयसार तात्पर्य वृत्ति

जयसेन की तात्पर्यवृत्ति भी आत्मख्याति के समान ही लोकप्रिय रही है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे तात्पर्यवृत्ति की भी पर्याप्त सख्या में पाण्डुलिपिया मिलती है। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि दिगम्बर जैन पचायती मन्दिर बसवा में सग्रहित है जिसका लेखनकाल सवत 1440 चैत्र सुदी सोमवार है।[1] डा नेमिचन्द्र के अनुसार आचार्य जयसेन की तात्पर्य वृत्ति मे 445 गाथाम्रो की सस्कृत टीका है जबकि आचार्य अमृतचन्द्र की आत्मख्याति टीका मे 415 गाथाम्रो की टीका है।[2] लेकिन कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन द्वारा प्रकाशित समयसार मे तात्पर्यवृत्ति मे गाथा सख्या 437 बतलाई है। गाथाम्रो के अन्तर के लिए लिखा है कि कुछ गाथाम्रो में क्रम विपर्यय मिलता है तथा तात्पर्यवृत्ति की अधिक गाथाम्रो में कई गाथाये अप्रासगिक है पुनरुक्त है और अन्य ग्रन्थो की है। दोनो टीकाम्रो मे कही-कही पाठ भेद और अर्थ भेद दृष्टिगोचर होता है।[3] लेकिन स्वय जयसेन ने वृत्ति की अतिम पुष्पिका मे गाथाम्रो की सख्या 439 लिखी है। इसलिये स्वय टीकाकार की गाथाम्रो की सख्या को ही सही मानना उचित रहेगा।[4] आचार्य जयसेन ने तात्पर्यवृत्ति का प्रारम्भ निम्न मगलाचरण से किया है जो अमृतचन्द के "नम समयसाराय की शैली पर है —

वीतराग जिन नत्वा ज्ञानानदैक सपदम्।
वक्ष्ये समयसारस्य वृत्ति तात्पर्यसज्ञिकम् ॥
वृत्ति का अन्त भी निम्न प्रकार किया है.—

---

1 ग्रन्थ सूची—पचम भाग—पृष्ठ सख्या 225
2 तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा—भाग—3 पृष्ठ स० 143
3 समयसार—कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन—पृष्ठ स०8

यश्चाभ्यस्यति संश्रणोति पठति प्रख्यापयत्यादरात् ।
तात्पर्याख्यमिद स्वरूपरसिकं निर्वर्णित प्राभृत ।।
शश्वदपमल विचित्रसकल ज्ञानात्मक केवल ।
सप्राप्याग्र पदेऽपि मुक्तिललनारक्त सदा वर्तते ।।

तात्पर्य टीका की विशेपता —

आचार्य जयसेन की तात्पर्य वृत्ति की शैली आत्मख्याति की शैली से एकदम भिन्न है । जयसेन प्रत्येक गाथा के पदो का शब्दार्थ पहले स्पष्ट करते है उसके पश्चात अयमभिप्राय. लिखकर उसका स्पष्टीकरण करते है । समस्त मूल ग्रन्थ शब्दश टीका में समाविष्ट है

उदाहरणार्थः—

एएसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरजणो भावो ।
ज सो करेदि भाव उवओगो तस्स सो कत्ता ।।90।।

यहा तात्पर्य वृत्ति मे एएसुय एतेपु का मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रेषू-दयागतेषु निमित्तभूतेषु सत्सु उवओगो ज्ञानदर्शनोपयोग लक्षणत्वादुपयोगी आत्मा तिविहो कृष्ण नील पीत त्रिविधोपाधि परिणतस्फटिक वत्त्रिविधो भवति । परमार्थेन तु सुद्धो शुद्धो रागादिभावकर्मरहित णिरंजणो निरजनो ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मार्जिनरहित ।...............

इस प्रकार गाथा के शब्दो की बहुत ही सरल ढग से टीका लिखी है जिसका अर्थ प्रत्येक पाठक के समझ में आ जाता है । इसके अतिरिक्त समयसार की तात्पर्यवृत्ति मे सिद्ध भक्ति, मूलाचार, परमात्म-प्रकाश, गोम्मटसार आदि ग्रन्थो के उद्धरण दिये गये है । इससे टीकाकार के सूक्ष्म ज्ञान का पता चलता है । उक्त विशेषताओ के अतिरिक्त कुछ विशेषताये निम्न प्रकार है.—[1]

1 समस्त पदो का व्याख्यान
2. आशय का स्पष्टीकरण ।
3 व्याख्या में निश्चय नय के साथ व्यवहार नय का भी अवलम्बन ।
4 व्याख्यान की पुष्टि हेतु उद्धरणो का प्रस्तुतीकरण ।
5. पारिभाषिक शब्दो का स्पष्टीकरण ।

1, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा :— भाग 3 पृ० सं० 144

इस प्रकार समयसार पर आचार्य जयसेन की तात्पर्यवृत्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण है तथा भाव एव भाषा की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

राजस्थानी आचार्य

अन्त में मैं एक तथ्य पर और प्रकाश डालना चाहूगा और वह है कि जयसेनाचार्य राजस्थानी विद्वान् थे तथा वे टोडारायसिंह के आसपास के रहने वाले थे। इनका साधू नामक गोत्र का भी इस क्षेत्र में सद्भाव रहा था और वह उधर ही मिलता था। इसलिये आचार्य जयसेन के राजस्थानी आचार्य होने का हमे और भी गर्व है।

4 अध्यात्म तरगिणी–समयसार टीका

अब तक हमने समयसार की तीन टीकाओ का परिचय दिया। समाज मे ये तीनो टीकायें ही प्रसिद्ध रही है। लेकिन समयसार कलश की एक और टीका मिलती है जो अध्यात्म तरगिणी के नाम से प्रसिद्ध है। इस टीका के टीकाकार भट्टारक शुभचन्द्र हैं जो अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान थे तथा जिनकी 47 रचनायें सस्कृत भाषा की तथा 7 रचनाये राजस्थानी भाषा की उपलब्ध होती है। शुभचन्द्र भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा के बहुश्रुत भट्टारक थे जिनका साहित्यिक काल सवत--1573 से सवत 1613 तक माना जाता है। शुभचन्द्र अपने युग के प्रभावशाली भट्टारक थे। उन्ही की समयसार कलश टीका की यह अध्यात्म तर-गिणी टीका है। इस टीका की एक पाण्डुलिपि में 130 पृष्ठ है तथा उसका लिपिकाल सवत 1795 है। भट्टारक शुभचन्द्र ने इस टीका को सवत-1573 में लिखकर समाप्त किया था।

विक्रमवरभूपालात् पचत्रिशते त्रिसप्तति व्यधिके।
वर्षेऽश्विनमासे शुक्लपक्षेऽथ पचमीदिवसे।
रचितेय वर टीका नाटक पद्यस्य पद्ययुक्तस्य।
शुभचन्द्रेण सुजयता विद्या सकल न पद्य पद्याकात्।

भट्टारक शुभचन्द्र की यह प्रथम कृति है जिसका अर्थ है कि उस समय तक शुभचन्द्र ने समयसारादि ग्रन्थो का गहरा अध्ययन कर लिया था और उस अध्ययन के पश्चात ही वे अध्यात्म तरगिणी जैसी टीका लिख सके थे।

टीका का आदि और अंतिम पद्य निम्न प्रकार है :—

शुद्धसच्चिद्रुप भव्याबुज चन्द्रामृतमकलकं ।
ज्ञानाभूष वन्दे सर्वविभाव स्वभावसयुक्त ।।

अंतिम पाठ—

. . . ...पातनिकाभिच भिन्न-भिन्नाभिः ।
जीयादाचन्द्रार्क स्वाध्यात्मतरगिणी टीका ।।8।।

5 समयसार तत्वबोधिनी टीका

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति द्वारा निबद्ध तत्वबोधिनी समयसार टीका अभी तक चर्चित टीका नही है । आमेर गादी के भट्टारक जगत्कीर्ति के शिष्य भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति ने सवत 1788 मे भादवा सुदी 14 के शुभ दिन इस टीका की रचना समाप्त की थी ।

इस टीका एक पाण्डुलिपि दिगम्बर जैन अभिनन्दन स्वामी मन्दिर बून्दी मे सग्रहित है । समयसार की यह टीका बहुत छोटी टीका है । इसका अंतिम भाग निम्न प्रकार है :—

वास्वष्टयुक्तसप्तेन्द्र युते वर्षे मनोहरे ।
शुक्ले भाद्रपदे मासे चतुर्दश्या शुभे तिथौ ।।1।।
ईसरदेति सद्ग्रामे टीकेय पूर्णतामिता ।
भट्टारक जगत्कीर्ति पट्टे देवेन्द्रकीर्तिना ।।2।।
दु कर्म्महानये शिष्य मनोहर-गिराकृता ।
टीका समयसारस्य सुगमा तत्वबोधिनी ।।3।।
बुद्धि मद्भि बुधं हास्य कर्त्तव्यनो विवेकभि· ।
शोधनीय प्रयत्नेन यतो विस्तारता वृजेत् ।।4।।
बुध : सुपाठयमान च वाच्यमान श्रु त सदा ।
शास्त्रमेतत् शुभ कारि चिर सतिष्टता भुवि ।।5।।
पूज्यदेवेन्द्रकीर्ति सं शिष्येण स्वांत हरिणा ।
नाम्नेयं लिखिता स्वहस्तेन स्वबुद्धये ।।6।।

सवत्सरे वसुनागमुनीन्द्र मिते 1788 भाद्रमासे शुक्ल पक्षे चतुदशी तिथौ ईसरदा नगरे श्री अजीतसिंह जी राज्य प्रवर्त्तमाने श्री चन्द्रप्रभ चैत्यालये भट्टारक जी श्री 108 श्री देवेन्द्रकीर्ति तेनेय समयसार टीका स्वशिष्य मनोहर कमनाद् पठनाय तत्वबोधिनी सुगमा निजबुद्ध्या पूर्वं

टीकामवलोक्य निहिता बुद्धिमद्भि. शोधनीया प्रमादाद्वा अल्पबुद्ध्या यत्र हीनाधिक भवेत् तद्वोधनीय. ... . ।

यह टीका अभी तक अप्रकाशित है ।

6 समयसार वृत्ति प्रभाचन्द्र कृत

समयसार पर भट्टारक प्रभाचन्द्र की एक और वृत्ति का उल्लेख राजस्थान के जैन भण्डारो की ग्रन्थ सूची पचम भाग पृष्ठ 225 पर मिलता है । प्रभाचन्द्र की यह पाण्डुलिपि भट्टारकीय शास्त्र भडार अजमेर मे सग्रहित है इसका लेखनकाल स 16 12 मगसिर वुदी पचमी है ।

7. समयसार कलशा टीका-नित्य विजय

समयसार कलश पर यह नित्य विजय की सस्कृत टीका है जिसकी एक मात्र पाण्डुलिपि दिगम्बर जैन मन्दिर दीवान जी कामा (राजस्थान) मे सग्रहित है । इस टीका का न तो रचनाकाल दिया है और न लिपिकाल इसलिए इसके रचनाकाल के सबध में कोई मत निर्धारित नही किया जा सकता । यह टीका आनन्दराम के लिये लिखी गई थी लेकिन ये आनन्दराम कौन थे इसका भी कोई सकेत नही मिलता । वैसे कविवर दौलतराम कासलीवाल के पिता का नाम आनन्दराम था । यदि हमारा यह अनुमान सही है तो यह टीका सवत् 1750 के आसपास की होनी चाहिये । इस टीका का अन्तिम पाठ निम्न प्रकार है —

इति श्री समयसार समाप्त । कुन्दकुन्दाचार्येण प्राकृत ग्रन्थ रुप मदिर कृत समयसारशास्त्रस्य मया अमृतचन्द्रेण सस्कृत रूप कलश. कृत. तस्य मदिरोपरि

नित्य विजय नामाह भावसारस्य टिप्पण ।
आनन्दराम सज्ञस्य वाचनाव्यलीलिखम् ॥

इस टीका का प्रारम्भ निम्न प्रकार किया गया है.—

सिध्दान्नत्वा लिखानीदमर्थसारस्य स टिप्पण ।
आनन्दरामसज्ञस्य वाचनाय च शुध्दये ॥

इस प्रकार समयसार पर अब तक सस्कृत भाषा मे सात टीकाये उपलब्ध होती है । मुझे यह कहते हुये प्रसन्नता है कि इन मे से पाच टीकाये राजस्थानी विद्वानो ने लिखी हैं-।

समयसार पर हिन्दी टीकायें

सयमसार प्राभृत पर सस्कृत टीकाओं के अतिरिक्त हिन्दी टीकाये भी खूब लिखी गई है। यदि समयसार पर हिन्दी टीकाये नही लिखी जाती तो सभवत. समयसार को वह लोकप्रियता प्राप्त नही होती तथा वह जन मानस पर अपना प्रभाव इस रूप मे नही छोडता जिसे हम आज देख रहे है। आज तो यह स्थिति है कि जिसने समयसार का अध्ययन नही किया उसकी विद्वत्ता भी अधूरी मानी जाती है। किन्तु प्राचीन काल मे भी हमारे विद्वानो ने इस रहस्य को समझा इसलिये वे हिन्दी टीका एव भाषान्तर के कार्य में लग गये। समयसार पर निबद्ध हिन्दी टीकाओ की राम कहानी निम्न प्रकार है —

1 समयसार टब्बा टीका - राजमल्ल जी सवत 1650
2 समयसार नाटक बनारसीदास—स 1683
3 समयसार नाटक टीका—रूपचन्द्र स. 1700 के लगभग
4-5 समयसार को दो अज्ञात टीकायें 17 वी शताब्दी
6 समयसार टब्बा टीका प दौलतराम कासलीवाल स 1802
7. समयसार भाषा प जयचन्द छाबडा स. 1864
8 समयसार टीका प सदासुख जी कासलीवाल स 1914
9. समयसार कलश भापा टीका ब्र शीतलप्रसाद जी

1 समयसार टब्बा टीका

प राजमल्ल को ढूंढारी भापा (राजस्थानी हिन्दी) में समयसार पर टब्बा टीका लिखने का सर्वप्रथम गौरव प्राप्त है। पडित जी काष्ठा-सघ माथुरगच्छ एव पुष्करगण के भट्टारको की आम्नाय के विद्वान थे। वे अच्छे कवि भी थे। लाटी सहिता की प्रशस्ति में उन्होने अपने आपको स्याद्वादानवद्य गद्य-पद्य विशारद लिखा है। जिससे लगता है कि वे स्याद्वाद एव अध्यात्मिक विपयो के ग्रन्थो में पारगत थे। कवि की अन्य तथा जम्बूस्वामी चरित्र, अध्यात्मकमल मार्त्तण्ड, समयसार कलश टीका, लाटी सहिता, पचाध्यायी। छन्दो-विद्या जमी 6 रचनायें प्राप्त हो चुकी है। ये सभी रचनाये एक से एक बढकर एव उपयोगी है। राजमल्ल राजस्थानी विद्वान थे। तथा वैराठ नगर जिसे विराट नगर भी कहा जाता है, उनकी जन्म भूमि थी। कवि ने अपने जन्मस्थल नगर का लाटी सहिता मे खूब

प्रशसा की है। कवि के जीवनकाल में बादशाह अकबर का शासन था। नगर कोट एव खाई से युक्त था। नगर के ऊचे स्थान पर फामन के बडे भाई न्योतो ने एक बहुत बडा जिनमन्दिर बनवाया था। जो एक कीर्ति स्तम्भ के रूप मे था।[1] कवि ने लाटी सहिता की रचना सवत् 1641 में की थी। उस दिन आश्विन शुक्ला दसमी थी।[2]

कवि की समयसार टब्बा टीका बहुत ही प्रसिद्ध रचना है। इसको खंडान्वयात्मक गद्य टीका भी कहा जाता है। यद्यपि टीका ढूढारी भाषा मे लिखी गई है फिर भी गद्य काव्य सम्बधी शैली एव पद लालित्य आदि सभी विशेषताओ से ओतप्रोत होने के कारण वह पाठको के मन मे अल्हाद उत्पन्न करने में समर्थ है।

अपनी खण्डान्वय टीका में प राजमल्ल जी ने कलश गत अनेक पदो के समुदाय रूप वाक्य को स्वीकार करके आगे उसके प्रत्येक पद का या पदगत शब्द का अर्थ को समझाते हुये उसका भावार्थ लिखा है तथा अपनी ढूढारी शैली मे भावार्थ लिखकर उस वाक्य में निहित रहस्य को स्पष्ट किया है। छठा कलश एव उसकी टीका को देखिये —

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदास्यात्मन
पूर्णज्ञानधनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्य. पृथक।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमादात्मा च तावानयम्।
तन्मुक्त्वा नव तत्व सन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु न ।।6।।

टब्बा टीका —तत न अय एक आत्मा अस्तु-तत् कहता तिहि कारण तहि, न कहता हम कहु अय कहता विद्यमान है, एक कहता शुद्ध, आत्मा कहता चेतन पदार्थ, अस्तु कहता होउ। भावार्थ इस्यो-जो जीव

---

1 तत्राद्यस्य वरो सुतो वरगुणो न्योताहव सघाधियो,
येनैताज्जिन मदिर स्फुटमिह प्रोतु गमन्यद्मुत ।
वैराठे नगरे निधाय विधिवत पूजाश्च वहवय कृता
अत्रामुत्र सुखप्रद स्वयशस स्तम समारोपित ।।72।। लाटी सहिता

2 श्रीनृपविक्रमादित्यराज्ये परिणते सति
महैक चत्वारिंशदिम रब्दाना शतषोडश' ।।2।।
तत्रापि अश्विनीमासे सितपक्षे शुभान्विते।
दशम्या दाशरथेश्च शोभने रविवासरे ।।3।।

वस्तु चेतना लक्षण तो सहज ही है । परि मिथ्यात्व परिणाम काई भम्यो हो तो अपना स्वरूप कहु नही जाने छं। तिहि सहि अज्ञानी ही कहिजे । तहि तहि इसौ कह्यौ जो मिथ्या परिणाम के गया थी यौ ही जीव अपना स्वरूप कौ अनुभवनशीली होहु ॥... ....

अन्य कवियों द्वारा उपयोग

प राजमल्ल जी का टब्बा टीका का कविवर बनारसीदास के साहित्यिक जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव पडा। समयसार नाटक की रचना मे प. राजमल्ल जो की टब्बा टीका प्रमुख सहायक थी । इसलिये उन्होने अपने समयसार नाटक मैं निम्न शब्दो मैं प राजमल्ल जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट की है —

> पाडे राजमल्ल जिनधर्मी समयसार नाटक के मर्मी
> तिन्हे ग्रन्थ को टीका कीन्ही, बालबोध सुगम करि दीन्ही ।
> इह विधि बोध वचनिका फैली, समै पाई अध्यातम सैली ।
> प्रगटी जगत माही जिनवाणी, घर घर नाटक कथा बखानी ॥

रचना काल —

प राजमल्ल ने समयसार टब्बा टीका को कब समाप्त किया इसका कही उल्लेख नही किया लेकिन उन्होने लाटी सहिता को सवत् 1641 मे समाप्त किया था इससे यह तो स्पष्ट है कि कवि का उस समय साहित्यिक जीवन प्रारम्भ हो चुका था । इस टीका की सवत 1653 की पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भण्डार (वर्तमान नाम जैन विद्या सस्थान) में सग्रहित है इससे यह तो स्पष्ट है कि यह टीका सवत् 1653 के पूर्व ही समाप्त हो गई थी। प परमानन्दजी शास्त्री ने इसका रचना काल सवत् 1640 से 1680 के बीच का माना है लेकिन आमेर शास्त्र भण्डार की पाण्डुलिपि के आधार पर इसका रचनाकाल सवत् 1650 अथवा इसके पूर्व का होना चाहिये ।

पाण्डुलिपियां.—

राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारो में इस टब्बा टीका की पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती है । इनमे अजमेर, कामां, बूदी, उदयपुर, नागौर एव जयपुर के शास्त्र भण्डारो के नाम उल्लेखनीय है ।

मोह घर मोही सौ, विराजे तामै तो ही सौ
न तोही सौ न मोहिसौ, न रागी निरबध है।
ऐसौ चिदानन्द याही घर में निकट तेरे।
ताहि तू विचारू मन और सब धध है ॥54॥

३ समयसार नाटक टीका

कविवर बनारसीदास ने सवत् 1693 मे नाटक समयसार को पूर्ण किया। यह नाटक पद्य मे था। भाषा सामान्य पाठको के समझ के बाहर थी। इसलिये उन्ही के मित्र प रूपचन्द ने सवत् 1700 में नाटक के पद्यो के भाव को गद्य मे लिखकर उसके पठन पाठन मे और भी योगदान दिया। प रूपचन्द ने नाटक समयसार की गद्य टीका को सवत् 1700 मे समाप्त किया था। ये भी आगरा निवासी थे तथा बनारसीदास के साथियो में से एक थे लेकिन ये पाण्डे रूपचन्द से भिन्न थे।

४. समयसार कलश हिन्दी गद्य टीका

आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार का सारे राजस्थान मे अपूर्व पठन पाठन होता रहा है। जब इसकी हिन्दी टीका करने का युग आया तो चारो ओर विद्वानो ने उसकी हिन्दी मे टीकाये लिखना प्रारम्भ किया। बागड प्रदेश में भी समयसार पर हिन्दी गद्य टीका लिखी गई जिसकी एक पाण्डुलिपि प्रतापगढ के भाई जी के मदिर में सुरक्षित है। यह टीका सवत् 1688 की लगती है क्योकि अन्त की प्रशस्ति में यही समय दिया हुआ है। गद्य टीकाकार ने अपने नाम का कही उल्लेख नही किया। गद्य की भाषा पर बागडी बोली का प्रभाव है। तथा प राजमल्ल को टब्बा टीका की शैली से मिलती जुलती शैली है। प्रतापगढ स्थित इसकी एक पाण्डुलिपि के आधार पर टीका आदि अन्त भाग यहा दिया जा रहा है जिससे पाठक टीका की भाषा, शैली एव अन्य विधा से परिचित हो सके।

समयसार भाषा टीका

प्रारम्भ .—ओ नम सिद्धेभ्यः श्री वीतरागाय नम.।
नम समयसाराय स्वानुभूत्या चकाशते।
चित्स्वभावायभावाय सव्वभावान्तरछिदे ॥1॥

अर्थ —भावाय नम भाव सब्द कहिता पदार्थ कहीइ तथा सव्व स्वरूपनि कहीए तथा चेतनालक्षणीक जे जीव तत्व परमात्म तत्व तेहने

सास्वता स्वरूप वस्तूनि माहरु नमस्कार छि छ ते वस्तु रूप केहवोछि चित स्वभावाय चित् कहिता चेतनलक्षणीक स्वभाव सर्वस्व कहीइ समस्त जीवनु चरित स्वभाव तेहनि नमस्कार हू करु हूं । एहवो नमस्कार करता विभेद था इछि एक चेतन पदार्थ विजो अचेतन पदार्थ तेह माहि चेतन पदार्थ नमस्कार करवा योग्य छि । बीजू पदार्थ वस्तुनु गुण वस्तु माहि गर्भित छि वस्तुनु गुण एकज सत्वछि तथापि भेदे कहिवा नि जोग्य छि विशेषण कहिता भेद पाषि वस्तुनि वि‍षि ज्ञान उपजि नही पुन कि विशीष्टाय भावाय वली केहवोछि भाव समयसाराय यद्यपि तोहि समय शब्दना अर्थ घणा छि तथापि समय शब्द एणि अवसर सामान्य पनि जीवादि सकल पदार्थ जानि वानि अर्थ बेवक जेकाइ सार छि सार कहिता उपादेय ग्रहिवा योग्य छि जीव वस्तु तेह नि हू नमस्कार करु छू नमस्कार प्रमाणराक्षो असार पणी जाणि अचेतन पदार्थनि नमस्कार निषेध्या छि । एतलिकणेकिनि तर्कणा करि से जु सघला पदार्थ आपणा आपणा गुण पर्याप विराजमान छे स्वाधनि छि कोई कहिनु आधनि न थी त जीव पदार्थनु सार पनु क्यमघाटिछि जी तेह नि एहनि वो प्रत्युत्तर कहया जैवि विशेषण कह्या पुन कि विशिष्य भावाय बली केह बुद्धि भाव स्वानुभूत्या चकासते सर्व भावतर छोदेव इणि अवसर स्वानुभूति कहिताँ नीराकुल च लक्षण शुद्धात्मन परिणवन रूप अतेंद्रीय सुख जाणीयु ।।

अन्तिम पाठ

> स्वशक्तिससूचित वस्तु तत्वे व्याख्या कृतेय समयस्य शब्दै·
> स्वरूपगुप्तास्य न किंचिदस्ति कर्तव्यमेवामृतचद्रसूरै ।1।

अमृतचन्द्रसूरै कर्तव्य न आमी एव अमृत चन्द्रसूरैः कहिता ग्र थ कर्तानो नामछि तेहनो किंचित नाटक समयसारनो कर्तव्य कहिता करिवो न अस्ति कहिता नथी । भावार्थ एहवो जो नाटक समयसार ग्रन्थनी टीका नोकर्ता अमृतचन्द्र नामा चार्य छ । ताछि तथापि महता छे सभार यीको निरक्ति छे तेह यकी ग्रन्थ करिवानो अभिमान करता न थी केहनाछि अमृतचन्द्रसूरो स्वरुप गुप्तास्य कहिता द्वादशागरूप सूत्र अनादि नीधन छि कहिनो इकस्यो न थो । एहवो जाणि आपणो ग्रन्थनो कर्त्तापणो नाम न थी माड्यो जेह एह्यो छि एहवो क्याम छि जोह थी समयस्य इय व्याख्याशब्दै कृता समयस्यकहता शुद्ध जीव स्वरूपनी इय व्याख्या कहता नाटक समयसार नाम ग्रन्थ रूप बखाण्यु शब्दै. कृता कहता वचनात्मक छि

जेह शब्द राशित्येणि करी करीछि केहनी छि शब्द राशि ,स्वशक्ति तेण करि संसूचित वस्तुतत्वं. स्वशक्ति कहिताँ शब्द माहिछि अर्थ सुचिवानी शक्ति तेणि करि ससूचित कहिता प्रकाशमान हुवा छि वस्तू कहता जीवादि पदार्थ तेहना तत्त्व कहिता जेहवा कह्यो द्रव्यगुणपर्याप रूप उत्पादव्यय-ध्राव्यरूप अथवा हय उपादेय रूप वस्तुनो नि.स्यो जेह करि नइ एहवाछि शब्द राशि इति स्याद्वाद भूमिका सपूर्ण हुई। श्री छ सवत 1688 वर्षे वशाख सुदि 3 गुरु रोहणि नक्षत्रे बागडदेशे राउल श्री समरसीराज्य-प्रवर्त्तमान्ये श्री वागिदोग शुभस्थान्ये श्री शातिनाथ चेत्यालये श्री मूलसघ सरस्वती गछे बलात्कारगणे नद्याम्नाये श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारक को पद्मनदि देवा तत्पट्टे भट्टारक श्री सकलकीर्ति ।छ।। श्री इति श्री समयसार ग्र थ सँपूर्ण । सवत् 1902 अशाढ सुदी 8 भौमवासरे लिखित ब्राह्मण छोटेलाल बासवान कोटा का पठनार्थ हूबड बागडया साहाजी श्री कस्तूरचन्दजी। शुभभवतु कल्याणमस्तु। ग्रन्थ श्लोक सख्या–5610

5 समयसार भाषा टीका

17 वी –18 वी शताब्दी में होने वाले हेमराज की आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनुसार, पचास्तिकाय जैसे ग्रन्थो पर भाषा टीका मिलती है। समयसार पर अभी तक उनको रचना नही मिली। लेकिन प हेमराज की समयसार पर भाषा टीका की एक पाण्डुलिपि नागौर के भडारकोय शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत की हुई मिलती है ऐसा उल्लेख डा प्रेमचन्द जैन जयपुर ने अपनी डेस्क्रिपटिव कंटालाग आफ मन्युस्क्रपटस् में पृष्ठ सख्या 25 पर निम्न प्रकार किया है—

समयसार भाषा–प हेमराज/पत्र सख्या 194/आकार $11\frac{1}{2}" \times 5\frac{1}{2}"$/ दशा–जीण/पूर्ण/भाषा–हिन्दी पद्य लिपि नागरी/ग्रन्थ सख्या 1090/ रच-नाकाल माघ शुक्ला 5 सवत् 1769, लिपि काल ×/

उक्त परिचय मे रचना काल स 1769 दिया हुआ है। जो पाडे हेमराज अथवा हेमराज गोदीका के साथ मेल नहीं खाता। हेमराज की अन्तिम रचना सवत् 1726 की मिलती है। इस तिथि मे एव उक्त तिथि मे 43 वर्ष का अन्तर आता है। हो सकता है यह लिपि काल ही हो। इस सम्बन्ध मे अभी खोज चल रही है।

समयसार नाटक टव्वा टीका

18 वी शताब्दी के महाकवि दौलतराम कासलीवाल ने भी समयसार नाटक की टव्वा टीका लिखकर अपने आपका समयसार के भाषा टीकाकारो में नाम लिखाया। इस टव्वा टीका की एक मात्र पाण्डुलिपि मुझे प्रतापगढ के भाईजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध हुई। यह आश्चर्य की बात है कि जयपुर के अथवा उदयपुर के किसी भी शास्त्र भण्डार मे दौलतराम कासलीवाल के इस ग्र थ की पाण्डुलिपि नही मिल पाई इसलिये जब मैने महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व एव कृतित्व पुस्तक लिखो तब प्रस्तुत टीका का उल्लेख नही किया जा सका।

प्रस्तुत टव्वा टीका के प्रारम्भ में बनारसीदास के समयसार नाटक की उत्थानिका उसी रूप मे दी है। उस पर कवि ने कोई टीका नही लिखी इसके पश्चात समयसार कलश टीका के एक-एक पद्य पर टव्वा टीका लिखी है लेकिन यह टीका प राजमल्ल जी की शैली में नही है किन्तु पद्य के नीचे उसका ढू ढारी भाषा मे अर्थ टव्वा पद्धति से अर्थ दिया गया है। यहा प्रारम्भिक तीन कलशो को टीका को पाठको के अवलोकनार्थ दिया जा रहा है।

1 अब नाटक समयसार का कलसा तथा कवित्त अनुक्रम लिख्यते·

नम समयसाराय स्वानुभूत्याचकासते ... .
प्रणमि परमत सारकौ प्रणमि साधु निग्रंथ।
समयसार वर्णन करो, प्रणमि जिनेसुर पय॥

नमस्कार होहु। और किसी छै पदार्थ सकल पदार्थन मैं सार छै शुद्ध स्वरूप है सो पदार्थ आपनी अनभूति करि प्रकाशमान छे अनुभूति कहता अनत गुन रूप निज विभूति किसौ छै पदार्थ चेतना स्वभाव छै। पदार्थ के ताई। औरू किसौ छै पदार्थ सर्व पदार्था का स्वरूप कौ ज्ञायक छै

कलश —अनत धर्मणस्तत्व पश्यती प्रत्यगात्मन.
अनेकाति मयो मूर्ति नित्यमेनप्रकाशताम्।12।

कियो छै शुद्धातमा अन्नत स्वभाव ने धर्‌या छं। स्वरूप ने। देखावैछै। शुद्धात्मा का। अनेकात छै मूरित जिह अंसो जो जिनवाणी। सौ नित्य हो प्रकाश नै करौ किसी छै जिनवाणी।

कलश —परपरिणति हेतो मोह नाम्नोनुभावात् ।
अविरति मनुभाव्य व्याप्ति कल्माषितायाः ॥
मम परम विशुद्धि चिन्मात्रमूर्ति. । भवतु समयसार भवतु
समयसार व्याख्य यैवानु भूतु ।

किसो छे मोह कर्म पर परणति को कारण छे । मोह नामा कर्म का प्रभावणतो निरन्तर न भाव का योग्य जे विषय कषाय । ति विषे प्रवृत्ति हुई । सो याही कालि पाछे तीर्थ की शुद्धता चाहो छा तो कालि मा कि साथ की छे । महारे । परम शुद्धता और किसो छ हू शुद्ध चेतना मात्र छे मूर्ति जि का । इहा कोई प्रश्न करे छे शुद्ध चिन्मात्र । होहू । क्या नया करि कथिमा मीठो शुद्ध स्वरूप या व्याख्यान करिवा करि के । हो । किसो छे हू अतिद्रीय सुखरूप छे । छो तो शुद्धता क्यो चाह्यो सो ताको समाधान ।

लेकिन प. दौलतराम जी ने बनारसीदास के समयसार नाटक के पद्यो पर भी टीका लिखी है । जीव द्वार के पाचवे पद्य पर लिखी हुई एक टीका का नमूना प्रस्तुत है —

आगम व्यवस्था कथन सवैया 39—(जीव द्वार)
निहचै मे रूप एक व्यवहार मे अनेक,
याही के विरोध मे जगत भर मायो है ।

ऐसो पद पूरन तुरेत तिनि पायो है (5) व्यवहार नय छै सो होय छै ध्यत्रि छठै गुणठाणो व्यवहार प्रथम अवस्था विषे छठे ब्रह्म गुणठाणे । इह लोक विषे । घरयो छे मुनि पद ज्याह त्याके । षेदि विषै । सहारो । को सहारा है तथापि सातमा गुणाठाणा स्यो लैर उपरला चौदमा ताँई शुद्धोपयोग की दसा में बाह्य व्यवहार सो प्रयोजन नाँही ॥

अन्तिम प्रशस्ति .—

टव्वा टीका के अन्त मे कवि ने जो प्रशस्ति दी है वह महत्वपूर्ण प्रश स्त है जिसके आधार पर कितने ही तथ्यो परकाश पडता है । प्रशस्ति लिखा है कि समयसार पर सर्व प्रथम आत्मख्याति, प्रवचनसार पर तत्व प्रदीपिका तथा पचास्तिकाय पर तात्पर्यवृत्ति आचार्य अमृतचन्द्र द्वारा लिखी गई । फिर उन्होने समयसार पर कलशा टीका लिखी । अमृतचन्द्र के पश्चात् ब्रह्मदेव के इन तीनो ही ग्रन्थो पर सस्कृत में टीकाये लिखी जो

अभी तक राजस्थान के किसी भी शास्त्र भण्डार में उपलब्ध नही हो सकी है और न किसी विद्वान ने उनके लिखे जाने का उल्लेख ही किया है। दौलतराम जी ने उनका उल्लेख ही किया है इसका अर्थ है उस समय तक ये टीकाये उनके सामने थी।

ब्रह्मदेव के पश्चात् प्रभाचन्द्र ने भी तीनो ही ग्रन्थो पर टीकाये लिखी। वर्तमान में प्रभाचन्द्र की प्रवचनसार पर ही प्रवचन सरोज भास्कर के नाम से टीका उपलब्ध होती है शेष समयसार एव पचास्तिकाय पर उनके द्वारा लिखी हुई टीकाये नही मिलती। इस प्रकार कविवर दौलतराम ने तीनो ग्रन्थो पर 9 सस्कृत टीकाओ एव एक कलश टीका का प्रस्तुत टब्बा टीका ग्रन्थ की प्रशस्ति में उल्लेख किया है।[2]

हिन्दी टीका ग्रन्थो में पण्डित राजमल्ल की समयसार कलशा हिन्दी टब्बा टीका तथा हेमराज द्वारा निबद्ध पचास्तिकाय एव प्रवचनसार पर टीकाओ का उल्लेख किया है। दौलतराम ने समयसार पर हिन्दी टब्बा टीका उदयपुर (राजस्थान) के बेलजी सेठ एव तपस्वी घासीराम के अनुराध पर की थी तथा टीका को उदयपुर मे ही सम्वत् 1804 आसोज बुदी पचमी शनिवार को पूर्ण करने का श्रेय प्राप्त किया था।[3] कवि ने टीका के अन्त मे एक विस्तृत प्रशस्ति दी है जो अत्यधिक महत्वपूर्ण एव इतिहास परक है इसलिये उसे अविकल रूप से यहा दिया जा रहा है।

❀ ब्रह्मदेव प्रगटे वहुरि जिनधारे ए ग्रन्थ
उपज्यो उर आनन्द अति, पायौ आतम पथ ।।28।।

❀ इनहू नाटक तीन परि, रची सुटीका तीन
सुगम सस्कृत गुन भरित अध्यातम रस लीन ।।29।।

1—प्रभाचन्द्र फुनि प्रगट के परकासै ए सार।
तिनहु टीका तीन करि, लीयौ सुजस विस्तार ।।30।।

2—या विध नव टीका भई, अर कलशा रस रूप।
सस्कृत वानि विषै, गाथा अर्थ अनूप ।।39।।

3—ठारहसौ चउसाल मास आसोज को।
तिथि पचमी कृष्ण पक्ष दिवस सनिवार को ।।50।।

नाटक एवं कलशा टव्वा टीका समाप्ति के पश्चात् कविवर दौलत राम ने एक विस्तृत प्रशस्ति दी है जो निम्न प्रकार है —

समयसार आतम दरव सौ नहि कर्तृम होय ।
आदि अन्त तैं रहित जो, धरे ज्ञान दृग दोय ।
ताहि लखावे सब्द सर, जैन बैन है नैन ।
हो उधरे गुरू सगते प्रगटे पूरण चैन ।। 2 ।।

छन्दावसरी–है अनादि अनिधन जिन ग्रन्था ।
जिन करि लखि है केवल पथा ।
द्वादशाग श्रुत चउविध वेहो ।
प्रथम करण अर चरण गनेंहो ।
फुनि द्रव्यानुयोग हे भाई ।
ए च्यारो अनुयोग कहाई,
कथा कथन है पहलौ ईन में ।
लोक विलोक दूजो तिन में ।। 4 ।।

तीजौ मुनि श्रावक व्रत भासी, मारगगण गुणठांणा प्रकासी ।
चौथे है पट द्रव्य विभाषक, वस्तु सुगुण पर्याय प्रकासक ।।5।।
ध्रुव उतपाद व्ययातम षटही, नित्यानित्य स्वरूप अमिट ही ।
षट में पच कहै जड रूपा, जीव पदारथ है चिद्रूपा ।।6।।
जीव अनन्त एक आकासा, पुदगल नन्तानन्त प्रकासा ।
धर्म एक अर अधरम एका, कालाणु फुनि गनै अनेका ।
उपादेय ह् एक निजातम हेय सकल पर वस्तु परातम ।
पर परणति तजि हौ निज लीना, इहै कथन चौथा मेकीना ।।8।।
चउअनुजोग एही चउवेदा, धर्ममूल सहु पाप उछेदा ।
है प्रथमानुयोग अनवस्था, तीनो धोरे एक अवस्था ।।9।।
अध्यातम रस सार, सो सब चौथा वेद मे ।
आगम भेद अपार, सौ तीननि मै जानिये ।।10।।

वसन्तलिलका—द्रव्यानुजोग पर द्रव्य वियोग कारी,
शुद्धात्म तत्व रस रूप भवाब्धितारी ।
चर्णानुजोग द्वय चारित भेद भावसै
पापानुयोग सहु मूल थकी प्रणासै ।।11।।
कर्णानुयोग त्रय लोक अलोक दर्शी, प्रथमानुयोग जिन कथा प्रदर्शी ।

एई जुवेद भव खेद उच्छेदकारी, आनन्द मूल परभाव प्रवचहारी ।।12।।
एइ चारौ वेद और न कोई वेद है ईन करि वे निरवेद खेद मिटे
भव भ्रमण कौ ।।13।।

स्वतः सिद्ध ए जानि, करता ईनको कौ नही ।
वक्ता सरवगि मान प्रतिवक्ता गणधरि मुनि ।।14।।
एकै माहि धारि, धारिनि माँहि एक ही
भेदन भाव विचारि, मुक्षु गौण कौ भेद है ।।15।।
चौथो सब कौ सीस, स्वपर प्रकाशक शुद्ध जौ ।
गुन गावै जगदीश, ताकौ दिव्यध्वनि विषै ।।16।।
ता माँहि बतसार अद्‌भुत रस नाटक त्रयी
कहत न आवै पार, महिमा नितही ग्रन्थ की ।।17।।
समयसार सुखदाय, प्रवचनसार अपार जौ
अर पचासलिकाय, ए तीनौ नाटक कहै ।।18।।
बहु गाथनि मझार, ईनको अति विसतार हैं
द्वादशाँग श्रुत धार, धारै निश्चल उर विषै ।।19।।
काल पवमाँ माँहि, बुद्धि अलप जीवौ अलप
तातै धरी न जाँहि, चरचा अति विसतार की ।।20।।
ईह विचार उर आनि, कुन्दकुन्द मुनि रायनै ।
रतनत्रय की खानि, गाई गाथा गिणती की ।।21।।
कियौ महौ ऊपगार, अलप मतिनि कै कारणै ।
भासै तीनौ सार, उलथा जुत गाथा माई ।।22।।
अमृतचन्द्र मुनीद्र, प्रगटै ता पीछै तिये ।
उरधरि देवजिनेन्द्र तिन ऊपरि टीका लिखी ।।23।।
समयसार गाथानि परि लिखी जु आतम ख्याति ।
ताकी महिमा अगम है, कही कौन विधि जाति ।।24।।
भासि तत्त्व प्रदीपिका, प्रवचन परि शिवदाय ।
तातपर्यवृत्ति कही, लखि पचास्तिकाय ।।25।।
टीका तीनौ सस्कृत आगम अरथ जिन माहि :
विरला बूझै भव्य जन ससे सकल न माँहि ।।26।।
समयसार टीका विषै, कलसा धरे विसाल ।
द्वं हू मे कंयक धरे, अनुभव रूप रसाल ।।27।।
ब्रह्मदेव प्रगटे बहुरि, जिनधारे ए ग्रन्थ ।

उपज्यौ उर आनन्द अति, पायौ आतम पथ ।।28।।
इनहू नाटक तीन परि, रची सुटीका तीन ।।
सुगम सस्कृत गुन भरित, अध्यातम रस लीन ।।
प्रभाचन्द्र फुनि प्रकट कै परकासे ए सार ।
तिनहू टीका तीनकरी, लीयौ सुजस बिसतार ।।30।।
या विध नव टीकाभई, अर कलसा रस रूप ।
सस्कृत बानि विषे, गाथा अर्थ अनूप ।।31।।

छन्दालिनी :—

ह्या लौ भाई नांही प्रवर्ती, विधानन्ता जीव हो ते निवर्त्ती ।
ज्यो ज्यो बौछी बृद्धि हु तीजु आई,त्यौ त्यौ ग्यांना लोक भाषा बनाई।
हुये पडित ज्ञानी राजमल्ला, तीनो ग्रन्थाधारि या त्यां अचला ।।32।।
कीनो टीका देख मझारी काव्या कैरी आत्मख्याति निहारै ।
भाणा टीका काव्य कल्पनि कीज्यो,ज्ञानारूढा राजमल्लीवनीजो ।23।
ताकौ देखे दास बणारसीने, कीये छन्दायेक रूपा रसीनै ।।34।।
पाछै हुये पडिता हेमराजा, तीनो ग्रन्थ वाँचि पाँज्या समाजा ।
कीनी टीका शुद्ध बालावबोधा, द्वै ग्रन्था की स्याद्वाद प्रबोधा ।।35।।

चौपाई —

प्रवचन अर पचासिति काया, ईनकी टीका हेम बनाय ।
जनम सुधा अपनौ सही, जिन मारग की सरधा लही ।।36।।
ईन परि फुनि कवितादि छन्द, रचै भविनि मनकरण आनन्द ।
समयसार दरसन परकास, काय पचास्ति ग्यांन विलास ।
चारित भासक प्रवचन सार, ए तीनों नाटक अविकार ।
समयसार तिन ही मे सार, निरविकलप अनुभव रस धार ।।38।।
समयसार को सरवस एहि कलसा काव्य अनुपान नेहि ।
राजमल्लो नै अर्थ विशेष, अध्यातम कौ रहसि अमेष ।।39।।
कौन प्रकार भयौ ईह टवा कलसा काव्यनि उपरि नवा ।
सौ तुम सुनहु भव्य मन लाय, समयसार धारौ सुखदाय ।।40।।
आनन्द सुत है दौलतिराम, जाति महाजन वसवै धाम ।
कूरम भृत्य उदेपुर रहे, सौ उकील राणां अति चेहै ।।41।।
वाचै जिन मारग के ग्रन्थ, जानै भलौ जैन को पथ ।

सुनै जिन प्रति जीव अनेक, सेठ बेलजी बहुत विवेक ।।42।।
समै पाई उदियापुर धाम, आये तपसी घासीराम ।
आचारी चरची कवि येस, धारै ब्रह्मचार को भेस ।।43।।
तिस्टै जिन मन्दिर मे सही, दौलति तिनसौ प्रीति जु लही
तिनके ढीग कीसौ सुबखान, बहु ग्रन्थनि कौ बुद्धि समान ।
फुनि वाचै कलसा गम्भीर, जिनमे पूरण समरस चीर ।
सुनि करि तपसी हरषित भए, जैसे वयन बदन तै चयै ।।45।।
धन्य धन्य जिन सासन रहै, जा प्रसाद केवल पद लहै ।
ज्यौ मन्दिर परि कलस ज्यू होय त्यो जिन श्रुत परिकलसा जोय ।
राजमल्ल कीयौ उपगार, भाषा टीका रची अविकार ।
करि कवित्त बणारसीदास, कौयौ समयसार परकाय ।।46।।

अरिल्ल छन्द :

काव्यनि उपरि अर्थ लखै अधर तनो ।
करो टबा तुम आवें जामहै रस घनो ।।
ब्रह्मचार कै वैन धरे दोलति हिये ।
सेठ देवजी लगनि करि उद्यमि कीये ।।48।।
कैयक दिवस रहैय तपसी तीरथ गये ।
सेत्रजा गिरिनरि भेटिबा परिणये ।
भई सहाई सेठ करायो ईह इह टबा ।
सब्द माज ही अर्थ मूल कीजो छबा । 49।।
ठारहसै चउसाल मास आसोज को ।
तिथि पचमि पक्ष कृष्ण दिवस सनिवार कौ /।
टबा पूरण भयौ भव्य हरिषित भये ।।
जयवतो जगमाहि सबद कहि सिरनये ।।50।-
नन्दो विरधो जैन मत सुख पयौ सहु जीव ।
यद्यपि दौलत वेल कं, बढौ विवेक सदीव ।।

इति श्री समयसार टब्बा संपूर्ण । ग्रन्थाग्रन्थ टबा ट्टिपग सर्व्र लोक 2671 सम्वत् 1823 वर्ष फागुण वदि 9 भौमे श्री प्रतापपुर नगरे साहा दयाल जी लिखित ।

समयसार भाषा टीका

महाकवि दौलत राम कासलीवाल ने सवत् 1804 मे समयसार नाटक पर हिन्दी मे टब्बा टीका लिखी। जैसे ही दौलतराम उदयपुर से जयपुर आये, यहा टोडरमल जी से उनका सपर्क हुआ। पडित जी के प्रभाव से ही दौलराम ने हरिवशपुराण, आदिपुराण एव पदम पुराण जैसे पुराणो को हिन्दी भाषा मे लिखकर समाज को पुराणो को स्वाध्याय करने का सुअवसर प्रदान किया। प जयचन्द छाबडा भी उस समय इन वरिष्ठ विद्वानो की साहित्यिक गतिविधियो से अवगत होते रहे। समयसार का स्वाध्याय होता था। पंडित राजमल्ल कविवर बनारसीदास एव दौलतरामजी की टीकाओ के माध्यम से समयसार के गूढ अर्थ को समझाते। समझाने का प्रयास होता रहता था लेकिन इसमें प० जयचन्द जी छावडा को सतोष नही हुआ और उन्होने समयसार की विस्तृत भापा टीका लिखने का निश्चय किया और सवत 1864 कार्तिक बुदी 10 को इस महान ग्रन्थ की भापा टीका पूर्ण करने का सौभाग्य प्राप्त किया।[1]

उस समय जयपुर मे तेरापथ शैली विद्वानो की शैली कही जाती थी। वडे—बडे विद्वान उसमे आते तथा बडे–बडे ग्रन्थो की जब स्वाध्याय होती तो चर्चाओ द्वारा उसके गूढ अर्थ को समझ लेते। इसी शैली मे पढने/स्वाध्याय करने अथवा सुनने के लिये पडित जी ने समयसार की विस्तृत भापा लिखो तथा कहा कि समयसार भाषा टीका को पढने के पश्चात् आपा पर का भेद जानकर हेय को त्याग एव उपादेय को गृहण करके शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त करो यही उन्होने पाठको के लिये मगल कामना की है।

समयसार गृन्थ ताकी देश के वचन रूप भाषा करी
पढो सुनू करो निरधार है।
आपा पर भेद जानि हेय त्यागि उपादेय गहो
शुद्ध आतम कू यहै बात सार है ।।21।।

प० जयचन्द जी ने आत्मख्याति एव तात्पर्यवृत्ति दोनोही टीकाओ

1—सवत्सर विक्रम तणू अष्टादश शत और ।।
चौसटि कार्तिक वदि शैं पूरण ग्रन्थ सुठौर ।।31।।

की शैली को अपनाया है इसलिये पहिले कलश को खण्डान्वय अर्थ फिर टीका एव उसके पश्चात उस गाथा का भावार्थ लिखा है।

इससे पाठक को ग्रन्थ का अर्थ समझने मे आसानी हो जाता है। प्रारम्भ मे पंडित जयचन्द जी ने समयसार की जिन भगवान का प्रतीक कहा है ।

समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिनवैन ।
मुद्रा जिन निरग्रन्थता, नमू करै सब चैन ।।1।।

पडित जयचन्द जी की भाषा टीका लोकप्रिय कृति मानी जाती है और इस टीका का प्रकाशन भी हो चुका है । सर्वप्रथम यह परम श्रुत प्रभावक जैन मण्डल बम्बई से प्रकाशित हुई थी तथा पुन इसका प्रकाशन उसी सस्था ने किया लेकिन प० मनोहरलाल शास्त्री ने भाषा में ढू ढारी पने को परिवर्तित करके किया गया । वैसे जयपुर के जैन शास्त्र भण्डारो में इसकी कितनी ही पाण्डुलिपिया मिलती है । इस ग्रन्थ की स्वय जयचन्दजी द्वारा लिखित मूल पाण्डुलिपि यहा के दिगम्बर जैन तेरहपथी बडा मन्दिर जयपुर में सुरक्षित है।

समयसार नाटक को वचनिका

19वी 20वी शताब्दी मे प सदासुख कासलीवाल ने विद्वता, पाडित्य, सैद्धान्तिक ज्ञान एव साहित्य लेखन मे जितनो प्रसिद्धि प्राप्त की वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है। प० सदासुख जी के पहिले होने वाले पडितो ने जिस प्रकार समयसार प्राभृत पर अपनी किसी न किसी प्रकार लेखनो चलायो थो और समयसारो विद्वानो में अपना नाम लिखाया था उसी प्रकार प० सदासुखजी ने भो समयसार को महत्वपूर्ण को समझा और उन्होने भो सवत् 1914 मे बनारसोदास के समयसार नाटक पर टिप्पण वचनिका के रूप में उसके गूढ अर्थ को और भी स्पष्ट करने का प्रयास किया ।[1] लेकिन पण्डित जयचन्द छावडा को भाषा वचनिका के समान यह भाषा टीका अधिक लोकप्रिय नही बन सको क्योंकि यह केवल बनारसीदास के पद्यो के ही अर्थ का खुलासा करती है उसमें स्वतन्त्र विचारक के रूप में पण्डित जो का कोई देन नही है । लेकिन

1—समयसार कलश टीका भूमिका—पृष्ठ 2

समयसार की लोकप्रियता मे कभी कमी नही हुई और उसका पठन पाठन स्वाध्याय, प्रवचन आदि खूब चलता रहा।

विगत पचास वर्षो मे समयसार का पठन पाठन

विगत 50 वर्षो मे समयसार के पठन पाठन का और भी अधिक प्रचार हुआ है। उसके कितने ही सस्करण प्रकाशित हुये हैं तथा उसके पाठ सम्पादन का भी कार्य हुआ है। उस कार्य को हम दो भागो मे बाट सकते हैं।

(1) समयसार का सम्पादन—जैन सन्तो द्वारा
(2) समयसार का सम्पादन—विद्वानो द्वारा

जैन सन्तो मे सर्व प्रथम ब्र: शीतल प्रसाद ने सन् 1915 मे इन्दौर प्रवास के समय समयसार की तात्पर्य टीका वचनिका लिखने का यशस्वी कार्य किया और उसे प्रकाशित भी कराया। इसके पश्चात् समयसार कलश की उनकी टीका सन् 1929 मे प्रकाशित भी हुई। इस प्रकार ब्रह्मचारी जी ने दोनो टीकाओ की भाषा टीका लिखकर तथा उसे प्रकाशित करवाकर एक उल्लेखनीय कार्य किया।[2]

ब्रह्मचारी अपने युग के प्रसिद्ध सन्त थे। उनका एक बार दर्शन करने का लेखक को सौभाग्य मिला था। उनका आकर्षक व्यक्तित्व था तथा वे एक बार दर्शन करने पर ही सहज ही में दर्शक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। उनके हाथ मे सदैव लेखनी एव कागज रहा करता था। ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी अपना प्रवचन "नम समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते" से करते थे उन्हे सारे कलश कठस्थ थे। इसलिये उनकी कलश टीका में उनकी आत्मा की आवाज सुनाई देती है। ऐसा लगता है कि जैसे उन्होने अपनी अन्तरात्मा की आवाज पर ही समयसार कलश टीका हिन्दी भाषा टीका लिखी हो। दो कलशो की हिन्दी टीका देखिये —

2—राजस्थान समयसार के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची भाग द्वितीय पृष्ठ 190.

भेद विज्ञानत सिद्धा॰ सिद्धा ये किल केचन ।
तस्यैबाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन ।।7।। (सवर अधिकार)

भावार्थ—यही है कि भेद विज्ञान के द्वारा जिन्होने शुद्धात्म स्वरूप का अनुभव पाया वे ही कर्मो से छूट कर सिद्ध हुये । एकमात्र मोक्षमार्ग स्वानुभव है अन्य कोई नही ।

ज्ञानवान् स्वरसतोऽपि यत. स्यात्सर्वरागरसवर्ज्जनशील ।
लिप्यते सकलकर्मभिरेप: कर्म्यमध्य पतितोऽपि ततो न ।
।।7।। (निर्जरा अधिकार)

भावार्थ —यही है कि ज्ञानी अतरग इच्छा रहित है । परमाणु को भी अपना नही जानता है मात्र अतीन्द्रिय आनन्द का रसिक है । ऐसा होते हुये भी यदि कर्मोदय से भोग सामग्री प्राप्त हो व उनको भोगे भी तथापि रजायमान न होने से वह कर्म का बध नही करता है । उदय प्राप्त कर्म झड जाते है । कर्म का लेप जिस कषाय से होता था वह कषाय ज्ञानी के पास रही नही है । वह पर पदार्थो में ममता रहित है ।

समयसार भाषा (आचार्य ज्ञान सागर जी)

आचार्य ज्ञानसागर जी इस शताब्दी के बहुश्रुत विद्वान एव आदर्श तपस्वी थे । आचार्य श्री के दर्शनो का लेखक को तीन-चार बार सौभाग्य मिला था । वे काय से गौर वर्ण, ध्यान एव तप से सन्नद्ध, पठन-पाठन एव साहित्य सरचना मे दत्तचित्त, वृद्धावस्था मे भी अपनी क्रियाओ एव पद के प्रति पूर्णत सजग, अपने सघ के साधुओ की दिनचर्या के प्रति जागरूक उनको पढाने लिखाने में सलग्न रहते थे । सस्कृत एव प्राकृत भाषा पर उनका पूरा अधिकार था । उनके सस्कृत के तीन महाकाव्य वीरोदय, जयोदय एव दयोदय वर्तमान शताब्दी के श्रेष्ठ महाकाव्य माने जाते है । इनके अतिरिक्त हिन्दी काव्य ऋषभ चरित, भाग्योदय, विवेकादेय आदि भी उनकी प्रसिद्ध कृतिया मानी जाती है ।

आचार्य ज्ञानसागर जी ने समयसार को हिन्दी मे भाषा टीका लिखकर अध्यात्म प्रेमियो को आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए एक सुखद अवसर प्रदान किया तथा आचार्य विद्यासागर जी जैसे महान् सन्त को समयसार का अमृत पान कराया । इस सबध में आचार्य श्री ने जो उद्गार प्रकट किये है उनमें कितनी आत्मा की आवाज भरी पड़ी है इसे देखिये —

मुनि–दीक्षा के उपरान्त, परमपावन, तरण-तारण गुरुचरण सानिध्य में इस महान् ग्रन्थ का अध्ययन प्रारम्भ हुआ। यह भी गुरु की "गरिमा" कि कन्नड भाषा-भाषी मुझे अत्यन्त सरल एव मधुर भाषा शैली मे समयसार के हृदय को श्री गुरु महाराज ने (आचार्य श्री गुरुवर ज्ञानसागर महाराज ने) बार-बार दिखाया। जिसकी प्रत्येक गाथा मे अमृत ही अमृत भरा है और मैं पीता ही गया। पीता ही गया। मा के समान गुरुवर अपने अनुभव और घोल-घोल कर पिलाते ही गये, पिलाते ही गये। फलस्वरूप एक उपलब्धि हुई, अपूर्व विभूति की, आत्मानुभूति की ? अब तो समयसार ग्रन्थ भी "ग्रन्थ (परिग्रह के रूप मे) प्रतीत हो रहा है। कुछ विशेष गाथाओ के रसास्वादन में जब डूब जाता हू तब अनुभव करता हू कि ऊपर उठता हुआ, उठता हुआ उर्ध्व गयमान होता हुआ सिद्धालय को भी पार कर गया हू, सीमोल्लघन कर चुका हू। अविद्या कहा ? कब सरपट चली गयी, पता तक नही रहा। आश्चर्य तो यह है कि जिस विद्या की चिरकालीन प्रतीक्षा थी, उस विद्या सागर के भी पार ! बहुत दूर !! पहुँच चुका हूँ। विद्या-अविद्या से परे ध्येय ज्ञान ज्ञेय सपेरे, भेदभाव, भेदाछेद से परे उसका साथी बनकर उद्ग्रीव उपस्थित हूं अस्य अकम्प निश्चय शैल !! चारो ओर छाई है सत्ता महासत्ता, सब समर्पित स्वय अपने मे।[1]

उक्त उद्गार आचार्य श्री के अन्तर की घटना है। आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने योग्य शिष्य को किस रूप मे समयसार का पान कराया कि अब वे स्वय आत्मदृष्टा बन गये।

समयसार – हिन्दी पद्य टीका

आचार्य ज्ञानसागर जी के द्वारा समयसार अमृत का पान करके उन्ही के शिष्य आचार्य विद्या सागर जी महाराज ने उसी का पद्यानुवाद करके उसके पठन-पाठन तथा रहस्य को समझने मे एक और गति प्रदान की तथा पूरे समयसार को 439 पद्यो में समेट लिया। आचार्य श्री के पद्यानुवाद के आरम्भ मे मगलाचरण के रूप में कहे हुये निम्न पद्य उल्लेखनीय है—

समयसार अधिकार को, सेतु तुल्य उरधार।
हो पाते है भव्यजन भव वारिधि से पार ॥

आचार्य श्री ने गाथाओ का पद्यानुवाद करने मे गागर मे सागर भर ने का भागीरथ कार्य किया है। यहा दो उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

---

2 समयसार—आचार्य कुन्दकुन्द–अन्तर घटना–आचार्य विद्यासागर मार्ग, ज्ञानोदय प्रकाशन जबलपुर, द्वितीय सशोधित सस्करण 1987

गाथा—जह णाम कोवि पुरिसो परदव मिणति जाणिदु चयदि ।
तह सव्वे परभावे, णादूण विमु चदे णाणी ।।40।। जीवाधिकार
पद्यानुवाद—मेरी न वस्तु यह है जब जान लेता, जैसा कि सज्जन उसे झट त्याग देता ।
रागादि भाव पर है पर से न नाता, ऐसा पिछान मुनि भी उनको हटाता ।।40।।

गाथा—अरसमरुवमगध अव्वत्त चेदणा गुण मसद्दं ।
जाण अलिगग्गहण जीवामणि दिट्ठरेठाण ।।54।।
आत्मा सचेतन अरूव अगघ धारा, अव्यक्त है अरस और अशब्द न्यारा ।
आता नही पकड मे अनुमान द्वारा, आकार से रहित है सुख का पिटारा ।।54।।

आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने अन्त में निम्न पद्य के साथ पद्यानुवाद समाप्त किया है—

है ! कुन्दकुन्द गुरु कुन्दन रूप धारी ।
स्वीकार हो कृति तुम्हे कृति है तुम्हारी ।
दो ज्ञान मागर गुरो ! मुझको सुविधा ।
विद्यादिसागर बनू तज दू अविद्या ।।

समयसार—

आचार्य श्री विद्यानन्द जी के निर्देशन मे प बलभद्र शास्त्री ने समयसार का पाठ सम्पादन किया है । इसमें गाथाओ का सान्वय अर्थ एव उसके नीचे अर्थ लिखा है । गाथाओ की सख्या 415 है । तात्पर्य कृति में 437 गाथाओ के होने तथा दोनो टीकाओ में 22 गाथाओ के अन्तर पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "दोनो टीकाओ की कुछ गाथाओ में क्रम विपर्यय भी मिलता है । तात्पर्य कृति की अधिक गाथाओ मे कई गाथाए अप्रासगिक है, पुनासक्त है और अन्य ग्रन्थो की है । दोनो टीकाओ मे कही कही पाठ भेद और अर्थ भेद दृष्टिगोचर होता है ।"

प्रस्तावना में छन्दो पर विचार किया गया है और समयसार की भापा को जैन शौरसेने स्वीकार किया है । समयसार में सर्वत्र माधुर्य के दर्शन होते है । कुन्दकुन्द ने समयसार मे मुख्यत शान्तरस का प्रयोग किया है । शान्तरस का स्थायी भाव निर्वेर या शमा है जो समयसार के विपय के अनुरूप है ।

शान्तरस सम्यग्ज्ञान से उत्पन्न होता है उसका नायक निस्पृह होता है। रागद्वेष के नितान्त त्याग से सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती है अत भव बीजाकुर जनना, राग द्वेप का परित्याग ही शान्तरस है। समयसार विषय अध्यात्म है। गाथा सख्या 15 मे बतलाया गया है कि जो भव्यात्मा आत्मा की शान्त भाव स्थित आत्मा मे अनुभव करता है वही आत्मा सम्पूर्ण जिन-शासन को जानता है।[1]

समयसार मे पीठिका एव नव पदार्थाधिकार को जीवाधिकार मे सम्मिलित कर लिया है तथा इन तोनो में 43 गाथाओ के स्थान पर 38 गाथाये दी गयी है। (1) णाणहिम भावणा खलु, (11) (2) जो आद-भावणमिण (12), (3) आदा खु मज्झ णाणे (१८), (4) जीवेव अजीवे वा (23), (5) ज कुणदि भाव मादा (२४), (6) कत्ता आदा भणिदो (81), (7) युग्गल कम्मणिमित्त (93), (8) उपदेसेण परोभव (197), (9) कोविंद दच्छो साहू (198), (10) कह एस तुज्झ णहवदि (208), (11) उदय विवागोक विविहो (210), (12) जो वेददि वेदिज्जदि (213), (13) बध्रव भोगणिमित्त (214), (14) मज्झ परिग्गहो जदि (215)

इसके आगे भी प्रत्येक अधिकार में गाथाओ मे अन्तर है। लेकिन यह अन्तर किस कारण से है। कौनसा पाठ सही है तथा कौनसा गलत है इस का कोई सन्तोषजनक समाधान नही हो पाया है। इसलिए समयसार मूल की प्राचीन पाण्डुलिपियो के आधार पर सम्पादन होना आवश्यक है तभी जाकर किसी प्रकार का निर्णय हो सकता है।

105 आर्यिका अभयमति माताजी ने भी अमृत कलश पद्यावली के नाम से समयसार को प्रस्तुत किया है। माताजी की वर्णन शैली सुन्दर है। समयसार की महिमा का बखान करते हुए माताजी ने लिखा है—

समयसार है शुद्ध मणि सम, सच्ची मोक्ष निशानी है।
समयसार जीवन की रेखा, भव्यजनो की खानी है॥
समयसार ऋषियो का भूषण, शीलवान का पानी है।
सदा रहे जयवत वास्तविक, समयसार सुखदानी है॥

---

1 समयसार—कुन्दकुन्द भारती 7 राजपुर रोड देहली।

इणमण्ण जीवादो देह पोग्गलमय थुणित्त मुणि ।
मण्णदि हु सथुदो वदिदो मय केवली भयवं (1–28)
त णिच्छये ण जुञ्जदि ण सरीरगुणा हि होंति केवलिणो ।
केवलगुणे थुणदि जो सो तच्च केवल थुणदि (1–29)

अर्थात् जीव से भिन्न इस पुदगलमय देह की ... करके ऐसा मानता है कि मैंने केवली भगवान की स्तुति की लेकिन वह स्तुति निश्चय नय मे उचित नही है ... कृष्णादि गुण केवली भगवान के नही होते । जो ... गुणो की स्तुति करता है वह परमार्थ से केवली भगव... है इसी तरह आगे भी इस समयसार मे व्यवहार और ... प्रकार लक्षण बतलाया है .—

व्यवहार नय—आयारादी णाण, जीवादी दसण च
छज्जीवणिक च तहा भणदि चरित्त तु

आचाराग आदि शास्त्र ज्ञान है, जीवादि तत्व ... और छह जीवनिकाय चारित्र है इस प्रकार ते ...

निश्चयनय—आदा हु मज्झ णाण आदा मे द ... ।
आदा पच्चक्खाण आदा मे सवरो जो।

अर्थात् निश्चय नय से मेरी आत्मा ही ज्ञान दर्शन और चारित्र है, मेरी आत्मा ही प्रत्याख्यान है ... सवर और योग है—यह निश्चय नय का कथन है ।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने समय पाहुड (समयसार) को निम्न प्रकार वर्णन किया है .—

जो समय पाहुडमिण पढिदूण य अत्थतच्चदो णादु ।
अत्थे ठाहिदि चेदा सो होहिदि उत्तम सोक्ख ।।10–10।।

अर्थात् जो भव्यात्मा इस समयप्राभृत को पढकर और इसे ... और तत्व से जान कर अर्थभूत शुद्धात्मा में ठहरेगा वह उत्तम सौख्य रूप हो जायेगा ।

विद्वानो द्वारा समयसार का वर्णन

समयसार पर कितने ही जैन विद्वानो ने कलम चलायी है उनमे प० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री, प जगमोहनलाल जी, डा. लालवहादुर शास्त्री, श्री महेन्द्र सेन जैनो, प कैलाश चन्दजो शास्त्री, प नाथूराम डोगरिया, वैद्य प्रभु दयाल कासलीवाल जयपुर, जैसे विद्वानो के नाम उल्लेखनोय है। प जगमोहनलाल जी ने अध्यात्म अमृतकलश के नाम से आचार्य अमृतचन्द की समयसार कलश टीका पर हिन्दी में टीका लिख कर उसका विस्तृत विवेचन किया है। प कैलाश चन्दजी ने उसका सम्पादन किया है। लेकिन ऐसा लगता है उनका चिन्तन एक पक्षीय है और वे सोनगढ की विचारधारा से अधिक प्रभावित है। फिर भी उन्होने सोनगढ की इस विचारधारा का खण्डन किया है कि रागदि भाव आत्मा से सर्वथा भिन्न है पर्याय होने से द्रव्य से भिन्न है अत पर्याय को अशुद्धता से मेरी कोई हानि नही है। मैं तो वर्तमान मे भी शुद्ध बुद्ध हू अत मुझे व्रत-चरित्र की क्या आवश्यकता है। आत्मा चेतन द्रव्य है। खाना पीना भोगना तो शरीर की क्रिया है उससे हमें कर्म बध क्यो होगा। उक्त कथन समझ की भूल है अभिप्राय को ठीक न समझने से ऐसी भूल होती है। द्रव्य शुद्ध और पर्याय अशुद्ध यह कथन यद्यपि सही है तथापि द्रव्य पर्याय में स्वरूप भेद दृष्टि की अपेक्षा ऐसा कथन किया जाता है। वस्तुत द्रव्य पर्याय मे सत्ता भेद नही हैं। द्रव्य की ही तो पर्याय है। द्रव्य तो परिणमन शील स्वभाव है। द्रव्य ही पर्याय का कर्त्ता और उसका भोक्ता है। अत: पर्याय की अशुद्धि जीव की ही अशुद्धि है। उस अशुद्धि से ही कर्म बध होता है। शरीर मे क्रिया तो मृत दशा मे भी खाने पोने भोगने की नही देखी जाती, जोवित दशा मे देखी जाती है अत वह क्रिया आत्मा के रागादि पूर्वक ही होती है और आत्मा की रागादि क्रिया ही आत्मा के बन्धनो का कारण है। अत आत्मा को विशुद्धि के लिए व्रत चरित्र आवश्यक है।[1]

20वी शताब्दी मे समयसार की चर्चा सबसे अधिक रही और यह आशा की जाती है कि इस महान ग्रन्थ का पठन पाठन समालोचनात्मक अध्ययन, सम्पादन एव प्रकाशन मे दिन प्रतिदिन वृद्धि होगी। समयसार पर सबसे अधिक प्रवचन कानजी स्वामी ने किये और उन्होने अपने आपको

1 अध्यात्म अमृत कलश—प्रस्तावना–पृष्ठ 22–23।

समयसार मय बनाने का प्रयास भी किया। यही नही उन्होने अपने भक्त-जनो को समयसार की स्वाध्याय मे लगा दिया लेकिन वे निश्चय व्यवहार निमित्त उपादान, पाप पुण्य के चक्कर में फस गये और अनेकान्त शैली को छोडकर एकान्तवादी बन गये। इससे समाज में वाद–विवाद बढता गया जो समाज हित में नही रहा। आचार्य कुन्दकुन्द ने एकान्तवाद का कभी पोषण नही किया और दोनो ही का मार्गो अनेकान्त दृष्टि से वर्णन किया।

श्री महेन्द्र सेन जैन ने समयसार कलश पर राजमल्ल टब्बा टीका की ढूढारी भाषा का हिन्दी अनुवाद किया साथ में बनारसीदास के समय-सार नाटक पद्यो को भी गद्य टीका के नीचे दिया। इससे गाथाओ के भाव समझने में सरलता हो गयी है।[1] प नाथूराम डोगरीय ने समयसार वैभव के नाम से समयसार प्राभृत की 415 गाथाओ का पद्यानुवाद किया है। डोगरीय जी ने समयसार का हार्ट खोलने का उत्तम प्रयास किया है।[2] हमारे छोटे भाई वैद्य प्रभुदयाल कासलीवाल ने समयसार की गाथाओ का हिन्दी पद्यानुवाद लिखकर समयसार प्रकाश नाम से प्रकाशित किया है।[3] भाषा सरल एव सारगर्भित है। उनका यह प्रयास अत्यधिक सराहनीय है।

20वी शताब्दी के अन्तिम चरण मे समयसार का विद्यार्थी सस्करण के नाम से श्री कुन्दकुन्द भारती देहली से प्रकाशित हुआ है।[4] इस सस्करण के समय–प्रमुख पूज्य आचार्य श्री विद्यानन्द जी महाराज है तथा सम्पादन पडित बलभद्र जैन ने किया है। पूज्य आचार्य श्री के सानिध्य में विद्वान सम्पादक ने 35 पाण्डुलिपियो एव 22 प्रकाशित प्रतियो के आधार पर सशोधित पाठो को मूलगाथा मे एव पाठभेदो को फुटनोट मे दिया है।

समयसार का नवीनतम सशोधित सस्करण ज्ञानोदय प्रकाशन जबलपुर से सन 1987 में प्रकाशित हुआ है। इसमे मूल गाथाओ के

---

1. वीर सेवा मन्दिर देहली द्वारा सन् 1987 मे प्रकाशित।
2 जैनधर्म प्रकाशन कार्यालय 5/1 तम्बोली बाखल इन्दौर-2
3 सरस्वती ग्रन्थ माला 2151 हैदरी भवन जयपुर-3
4. श्री कुन्दकुन्द भारती 7-A राजपुर रोड दिल्ली-110006

अतिरिक्त आचार्य जयसेन की सस्कृत टीका, आचार्य ज्ञानसागर जी की हिन्दी टीका एव पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का पद्यानुवाद दिया गया । समयसार का यह सस्करण भी स्वाध्याय प्रेमियो के लिये सुन्दर बन पडा है। इस प्रकार वर्तमान शताब्दी के समाज के दो बहु-चर्चित श्रद्धास्पद आचार्यों का समयसार का सम्पादन एव प्रकाशन निश्चय ही समयसार की महत्ता को प्रगट करने वाला ही नही किन्तु समयसार की स्वाध्याय आबालवृद्ध श्रावको के लिये आवश्यक है इसका भी हमे इनसे सकेत मिलता है।

— ० —

प्रवचनसार

प्रवचनसार आचार्य कुन्दकुन्द की महत्वपूर्ण कृति के रूप में समादृत है। यह समयसार के बाद की रचना है तथा सीमधर स्वामी के समवसरण से लौटने के पश्चात् उनके प्रवचनो का सार के रूप में लिखी गई कृति है इसलिये उसका नाम भी प्रवचनसार रखा गया प्रतीत होता है। एक ओर जहाँ समयसार की भाषा शोरसैनी प्राकृत है वहाँ प्रवचनसार की भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है लेकिन पिशल ने प्रवचनसार की भाषा को शोरसैनी प्राकृत लिखा है।[1] इसलिये इसका निर्माण महाराष्ट्र के किसी भाग में हुआ होगा।

प्रवचनसार को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम श्रुतस्कध में ज्ञान की चर्चा है इसलिये वह ज्ञानाधिकार के नाम से जाना जाता है। दूसरे श्रुतस्कध में ज्ञेय तत्व की चर्चा है इसलिये उसे ज्ञेयाधिकार नाम दिया गया है। तीसरे श्रुतस्कध मे चारित्र तत्व का वर्णन मिलता है इसलिये उसे चारित्राधिकार नाम से सबोधित किया गया है।

पाण्डुलिपियाँ —

राजस्थान एवं देश के अन्य प्रदेशों के शास्त्र भण्डारों में प्रवचनसार की सैकडो पाण्डलिपियाँ सुरक्षित हैं। लेकिन हमारी स्वाध्याय के प्रति विशेष रुचि नही होने के कारण प्रवचनसार विशेष लोकप्रिय नहीं बन सका। पाश्चात्य विद्वान बूलर, डा. जैकोबी, ल्यूमैन पिशल को प्रवचनसार के अस्तित्व का बहुत बाद मे पता चला। लेकिन जब उन्होने इस कृति को पढा तो वे इसके विषय, भाषा एव शैली को देखकर आश्चर्य करने लगे।

मूल गाथाओ में अन्तर :—

प्रवचनसार की मूल गाथाओ मे भी अमृतचन्द्र एव जयसेन एक मत नही है। आचार्य अमृतचन्द्र ने प्रवचनसार की अपनी तात्पर्यवृत्ति में 275 गाथाओ पर टीका लिखी है जबकि आचार्य जयसेन ने 311 गाथाओं पर टीका लिखी है। दोनो आचार्यो की तीनो अधिकारो के अनुसार निम्न प्रकार गाथायें है।

---

1. प्रवचनसार

	अमृतचन्द्र	जयसेन
ज्ञान तत्व	92	101
ज्ञेय तत्व	108	113
चारित्र तत्त्व	75	97
योग	275	311

इस प्रकार दोनो आचार्यों की टीकाओ मे 36 गाथाओ का अन्तर है। कन्नड कवि बालचन्द्र एव सस्कृत कवि प्रभाचन्द्र दोनो ही आचार्य जयसेन के मत का समर्थन करते है। डा उपाध्याय के अनुसार ये गाथायें अतिरिक्त गाथायें हैं यदि ये न भी रहे तो भी प्रवचनसार की मूल भावना मे कोई अन्तर आने वाला नही है।

प्रवचनसार का सार—

गाथा सख्या 1 से 5 तक—त्रैलोक्य वदित भगवान महावीर की वदना के पश्चात् शेष 23 तीर्थ करो की एव अतीत काल में होने वाले सिद्धो की वदना की गई है। आचार्य, उपाध्याय एव सर्व साधुओ को नमस्कार के पश्चात् अढाई द्वीप मे रहने वाले सभी अरिहन्तो को नमस्कार किया गया है।

गाथा सख्या 6 से—

वीतराग चारित्र के मोक्ष एव सराग चारित्र से स्वर्गसपदा सुख समृद्धि की चर्चा के पश्चात चारित्र का लक्षण बताते हुये मोहक्षोभ से विहीन चरित्र ही धर्म रूप है। जो वस्तु स्वभाव है वही धर्म है और यह गुण पर्याय एव द्रव्य स्वरूप है।

वीतराग चारित्र से मोक्ष एव सराग चारित्र से स्वर्गसपदा सुख समृद्धि मिलने की चर्चा के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द ने चारित्त खलु धम्मो अर्थात् चारित्र ही धर्म रूप है जो मोह एव क्षाभ से हीन होना चाहिये। धर्म वस्तु स्वरूप है और वस्तु द्रव्य गुण, पर्याय मय है। आत्मा भी वस्तु है जिसका

परिणमन शुभ अशुभ और शुद्ध, भेद से तीन तरह का होता है। जब जैसा परिणमन होता है वैसा ही उस समय वही आत्मा का स्वरूप बन जाता है। शुभ परिणमन के समय शुभ अशुभ के समय अशुभ और शुद्ध के समय यह आत्मा ही शुद्ध हो जाता है। इस आत्मा को शुद्धोपयोग से निर्वाण, शुभोपयोग से स्वर्गादि सुख तथा अशुभोपयोग से नरकादि एव तिर्यञ्च गति मिलती है। आचार्यश्री आगे कहते है कि शुद्धोपयोग वाले को ही वास्तविक सुख होता है। जब यह आत्मा अशुभ से शुभोपयोग पर आता है। तत्वो का स्वरूप पर श्रद्धान करता है फिर शम दम के द्वारा विशुद्ध से विशुद्धतर के रूप मे परिणत होने वाले अपने परिणामों को प्राप्त करता है और अपने अन्तरग की क्षुब्धता को भी जीतकर चित्त की स्थिरता से पूर्ण वीतराग होकर ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मो को दूर हटाकर सर्वज्ञ बन जाता है और जब शुद्ध अवस्था की एक बार प्राप्ति हो गई उसका फिर कभी अभाव नही होता।

ज्ञानाधिकार

आत्मा ज्ञान रूप भी है और ज्ञेयरूप भी है क्योकि वह जिस प्रकार इतर पदार्थो को जानता है उसी प्रकार वह अपने आप को भी जानता है। जो अपने जो नही जानता है वह दूसरे को भी नही जान सकता है और न देख ही सकता है। भगवान सर्वज्ञ के दिव्य ज्ञान मे तीनो काल की समस्त द्रव्य पर्याय एक ही साथ प्रत्यक्ष प्रतिभाषित होती है।

यद्यपि केवलज्ञानी सब पदार्थों को जानता है तो भी इन पदार्थों को राग द्वेष मोह भाव से न परिणमता है न ग्रहण करता है और न उनमे उत्पन्न होता है इस कारण बध रहित है। क्रिया दो प्रकार की है एक ज्ञप्ति क्रिया और दूसरी ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया। उनमे ज्ञान की राग द्वेष मोह रहित जानने रूप क्रिया को ज्ञप्ति क्रिया और जो राग द्वेष मोहकर पदार्थ का जानना ऐसी क्रिया को ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया कहते है। इनमें से ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया से बध होता है। ज्ञप्ति क्रिया से नही होता। केवली के ज्ञप्ति क्रिया है इसलिये उसके बध नही होगा।

केवल ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है यह ज्ञान उपादेय है अतीन्द्रिय सुख का कारण है। इन्द्रिय ज्ञान परोक्षज्ञान है जो हेय है। इन्द्रिय सुख भी हेय है तथा वह सुखाभास है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि इन्द्रियो से भोगा जाने वाला सुख पराधीन है। बाधा सहित है, विच्छिन्न है बन्ध का कारण है विषम है अत. उसे दु.ख ही जानना चाहिये।

जिसमें आकुलता न हो वही सुख है। यह अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान आकुलता रहित है इसलिये सुखमय है। परोक्ष ज्ञान इन्द्रियजन्य है इसलिये सुखरूप नही है। जो अज्ञानी आत्मिक सुख का आस्वादन लेने वाले नही है वे मृगतृष्णा की तरह अजल में जलबुद्धि करके इन्द्रियाधीन सुख को सुख मानते है। (गाथा 63) आत्मा का स्वभाव ही सुख है इसलिये इन्द्रियो के विषय भी सुखके कारण नही है। इन्द्रिय जनित सुख दु खमय ही है। लेकिन अज्ञान बुद्धि से सुखरूप मालूम पडते है। सासारिक सुख और दुख वास्तव में दोनो एक ही हैं क्योकि जिस प्रकार सुख पराधान बाधा सहित, विनाशिक, बधकारक तथा विषम इन पाच विशेषताओ स युक्त हैं उसी प्रकार दु ख भी पराधीन आदि विशेषताओ सहित है और इस सुख का कारण पुण्य भी पाप की तरह दु ख का कारण ह। दोनो मे आत्मधर्म का अभाव है।

जो जाणदि अरहत दव्वत्त-गुणत्त-पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाण मोहो खलु जादि तस्स लय ॥ 1801 ॥

जो मनुष्य द्रव्य गुण पर्यायो से अरहन्त देव को जानता है वह मनुष्य अपने स्वरूप को जानता है और उसका मोह नाश को प्राप्त होता है।

ज्ञेयाधिकार :—

द्वितीय ज्ञेयाधिकार मे अमृतचन्द के अनुसार 108 एवं जयसेन के अनुसार 113 गाथाये है। इस अधिकार में गाथा सख्या 1 से 34 तक सामान्य द्रव्य का स्वरूप, लक्षण, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका स्वरूप, द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक नय, सप्तभग, चेतना और उसके भेदों का विशद विवेचन किया गया है। गाथा 35 से 56 तक द्रव्य के भेदो जीव, अजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल का और अनन्तर अशुद्ध जीव का वणन हुआ है। गाथा 65, 66 मे शुभोपयोग अशुभोपयोग का स्पष्टीकरण किया गया ह। फिर जीव और पुद्गल का विस्तृत विवेचन, द्रव्य-कर्म और भावकर्म जैसे गूढ विषयो को सरल शब्दो में स्पष्ट कर यह प्रतिपादित किया गया है कि सब पदार्थ ज्ञय हैं और जीव इनका ज्ञाता है। आत्मा शाश्वत है और अन्य सब पदार्थ क्षणिक है। इस प्रकार पदार्थो में ममत्व त्याग कर अपनी आत्मा मे विशुद्धता, कोमलता को प्राप्त करने

वाला जीव मिथ्या दर्शन का नाश कर सकता है। शुद्धात्मा के ध्यान के लिये मुनि अवस्था का धारण करना आवश्यक होता है। अर्थात दुरभिप्राय का नाश करके सम्यग्दृष्टि हो जाने पर भी जब तक मुनि न बने तब तक शुद्धात्मा का ध्यान नही बन सकता है क्योकि गृहस्थावस्था में मनुष्य का मन विषयो मे फसा रहता है वह राग द्वेप के रग में रगा रहता है। आज तक जितने भी जिन (सामान्य केवली) जिनेश्वर (तीर्थंकर केवली) और सिद्ध हुये है वे सब इसो निर्मल मार्ग (मुनि मार्ग) को अपनाने से हुये है।

चारित्राधिकार मे अमृतचन्द्र और जयसेन की टीकाओ मे 22 गाथाओ का अन्तर ह। अमृतचन्द्राचार्य ने 75 और जयसेनाचार्य ने 97 गाथाओ पर टीका लिखी है। इस अधिकार में बतलाया गया है कि यद्यपि ज्ञान आत्मा का अनन्य गुण है परन्तु ज्ञान की सार्थकता पवित्र आचरण के द्वारा होती है। आचरण के अभाव मे ज्ञान पगु है। सफलता चारित्र के ही अधीन है इसलिए प्रत्येक मनुष्य को चारित्र धारण करना चाहिये। क्योकि मनुष्य गति मैं ही चारित्र धारण किया जा सकता है। सम्यग्दर्शन तो अन्य गतियो मे भी हो जाता है। प्रवचनसार की गाथाओ में क्रमश चारित्र धारण करने की रीति, साधु के कर्त्तव्य, आहार-विचार, मुनियो के भेद, परिग्रह, पच पाप, स्त्री मुक्ति-निषेध, चारित्र का महत्ता, अटल समता, सच्चा मुनि, वैय्यावृत्त, सत्सगति आदि विषय आये है जिनकी आचार्य श्री ने आर्षग्रन्थो के आधार पर सरल शब्दो मे व्याख्या प्रस्तुत की है। आचाय कुन्दकुन्द की निम्न गाथाये कितनी गूढ अर्थ लिये हुए है —

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिसा।
पयदस्स णत्थि बधो हिंसामेतेण समिदस्स ।।181।

अर्थ :—जीव मरे अथवा न मरे इससे हिंसा व अहिंसा नही जानी आती है किन्तु असयत भाव अर्थात् प्रमादपूर्वक आचरण करना ही उस श्रमण को हिसक बनाता है। समिति के साथ आचरण करते हुये मुनि के द्वारा किसी जीव का वध हो भी जाये तो भी वह श्रमण हिसक नही है।

सस्कृत हिन्दी टीकायें :—

समयसार की तरह प्रवचनसार पर भी सस्कृत एवं हिन्दी मे कितने ही आचार्यो एव विद्वानो ने टीकाये एव पद्यानुवाद लिखा है और

यह टीका करने का क्रम आज तक भी उसी तरह चल रहा है बल्कि देखा जावे तो इस क्रम मे बराबर वृद्धि ही हो रही है। तथा सतो एव विद्वानो का ध्यान बराबर प्रवचनसार की ओर जा रहा है। सस्कृत टीकाओ मे आचार्य अमृतचन्द्र, आचार्य जयसेन, प्रभाचन्द्र एव मल्लिषेण का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। महाकवि दौलतराम कासलीवाल ने अपनी समयसार की हिन्दी टीका में ब्रह्मदेव के नाम का प्रवचनसार के सस्कृत टीकाकारो में उल्लेख किया है जबकि अन्य किसी विद्वान ने टीकाकारो मे ब्रह्मदेव का नाम नही लिखा है और राजस्थान के अथवा अन्य किसी प्रदेश के शास्त्र भडार मे ब्रह्मदेव की सस्कृत टीका की पाण्डुलिपि अभी तक नही मिल सकी है। दौलतराम ने जयसेन के नाम को भी टीकाकारो में नही गिनाया है यह भी एक आश्चर्य की वस्तु है। दौलतराम जैसे महान् विद्वान् द्वारा जयसेन के नाम को छोड जाना तथा उनके स्थान पर ब्रह्मदेव की टीका का उल्लेख करना यह भी महत्वपूर्ण बात है। हो सकता है जयसेन को ही ब्रह्मदेव समझ लिया हो लेकिन ऐसे बडे विद्वान से ऐसी गलती होना सम्भव नही है इसलिये हो सकता है कि महाकवि के सामने ब्रह्मदेव की कोई टीका रही हो। जो भी हो यह खोज का विषय अवश्य है।

पुराने हिन्दी टीकाकारो मे पाण्डे हेमराज ने गद्य और पद्य मे, तथा पद्यानुवाद में हेमराज गोदिका, जोधराज गोदिका, देवीदास एव वृन्दावनदास का नाम उल्लेखनीय है। इनमें हेमराज गोदिका, देवीदास की टीकाओ का प्रथम बार परिचय प्राप्त होगा। और इन दोनो टीकाओ की खोज का श्रेय भी प्रस्तुत पुस्तक के लेखक एव सम्पादक को जाता है। प्रवचनसार की इन सभी टीकाओ का आगे विस्तार से वर्णन किया जावेगा।

आचार्य अमृतचन्द्र की तत्वदीपिका टीका

आचार्य अमृतचन्द्र ने समयसार की तरह प्रवचनसार पर भी सस्कृत में टीका लिखी जिसका नाम तत्व दीपिका रखा गया। अमृतचन्द्र आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थो के प्रथम टीकाकार है। इसके पूर्व किसी अन्य आचार्य की टीका नही मिलती है। अमृतचन्द्र ने समयसार की टीका के समान प्रवचनसार की टीका मे शब्दो पर टीका नही लिखकर गाथा के भावार्थ को ही अपनी विशिष्ट शैली मे प्रस्तुत किया है। अमृतचन्द्र प्रवचनसार के प्रथम टीकाकार है इसलिए उनकी इस टीका से प्रवचनसार के मर्म को समझने में विशेष सहयोग मिलता है। अमृतचन्द्र का गाथा का शब्दार्थ

लिखने मे विश्वास नही था इसलिए उन्होंने एक दार्शनिक के रूप में उसका भावार्थ लिखकर उसके महत्व को और भी बढा दिया है लेकिन उनकी टीका की शैली अत्यधिक आकर्षक है। प्रवचनसार की टीका से ऐसा लगता है कि जैसे वे कवि पहिले है और टीकाकार बाद में हैं। वे सस्कृत वाक्यो पर पूर्ण अधिकार रखते है। जैन दार्शनिक शब्दो का वे बेधडक होकर प्रयोग करते है। वे अध्यात्म कवि हैं और सारे जैन वाड्मय उन जैसा विद्वान् ढू ढने से नही मिलता। इस दृष्टि से निम्न गाथा की टीका देखने योग्य है :—

उवओगमओ जीवो मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि।

पप्पा विविधे विसये जो हि पुणो तेहिं सम्बन्धो। 83।

अयमात्मा सर्व एव तावत्सविकल्पनिर्विकल्प परिच्छेदात्मकवादुपयोग मय:। तत्र यो हि नाम नानाकारान परिच्छेद्यानर्थानासाद्य मोहं वा राग वा द्वेषं वा समर्पैति स नाम तैं पर प्रत्ययैरपि मोहराग द्वेषै रूपरक्तात्म स्वभावात्वान्नीलपीतरक्तोपाश्रयप्रत्ययनीलपीत रक्तत्वैरूप रक्तस्वभाव· स्फटिकमणिरिव स्वयमेक एव तद्भाव द्वितीयत्वाद्वन्द्यो भवति।83।

रक्तो बधदि कम्म मच्चदि कम्मेहि रागरहिदप्पा।
एसो बन्धसमासो जोवाण जाण णिच्छयदो।87।

टीका—यतो राग परिणत एकाभिनवेन द्रव्यकर्मणा बध्यते न वैराग्यपरिणत, अभिनवेन द्रव्यकमणा राग परिणतो न मुच्यते वैराग्यपरिणत एव, सस्पृश्यतैवाभिनवेन द्रव्यकर्मणा चिरसचितेन पुराणेन च न मुच्यते एव सस्पृश्वतैवाभि नवेन द्रव्यकर्मणा चिरसचितेन पुराणेन च वैराग्यपरिणतो न बध्यते। ततोऽवधार्यते द्रव्य बन्धस्य साधकतमत्वाद्रागपरिणाम एव निश्चयेन बन्ध.।।87।।

पाडे हेमराज ने अमृतचन्द की उक्त टीका की प्रशसा करते हुये इसे अति सुन्दर, सरस एव सरल तत्व परकासिनी कहा है .—

मूल ग्रन्थ करता भए कुन्दकुन्द मतिमान।
अमृतचन्द्र टीका करी, देव भाष परवान।1।
जैसे करता मूल कौ, तैसौ टीकाकार।
तत्तै अति सुन्दर सरस, बरतै प्रवचनसार।2।
सकल तत्व परकासिनी तत्वदीपिका नाम।
टीका सरसुति देविकी यह टीका अभिराम।3।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो में प्रवचनसार के अमृतचन्द टीका की सर्वाधिक पाण्डुलिपिया सग्रहित है जिनका उपयोग ग्रन्थ के सम्पादन में किया जा सकता है।

प्रवचनसार सस्कृत टीका—ब्रह्मदेव कृत

ब्रह्मदेव द्वारा प्रवचनसार पर सस्कृत टीका लिखने का उल्लेख महाकवि प० दौलतराम कासलीवाल ने अपनी समयसार टीका मे निम्न प्रकार किया है।

ब्रह्मदेव प्रगटे बहुरि जिनधारे ए ग्रन्थ।
उपज्यो उर आनन्द अति, पायो आतम पथ ।28।
इनहू नाटक तीन पर, रची सुटीका तीन।
सुगम सस्कृत गुन भरित, अध्यातम रस लीन ।29।

प० दौलतराम जी ने ब्रह्मदेव की टीका उल्लेख अमृतचन्द्र के पश्चात् एव प्रभाचन्द्र के पूर्व किया ह इसलिये ये वे ही ब्रह्मदेव हैं जिन्होने द्रव्यसग्रह पर एव परमात्मप्रकाश पर सस्कृत टीका लिखी थी और जिनका केशोराय पाटन प्रमुख केन्द्र था।

जयसेनाचार्य कृत तात्पर्यवृत्ति टीका

प्रवचनसार आचार्य जयसेन की टीका भी उतनी लोकप्रिय एवं प्रामाणिक मानी जाती है जितनी अमृतचन्द्र की टीका। इसलिये तात्पर्यवृत्ति की भी राजस्थान के शास्त्र भण्डारो में अच्छी सख्या मे पाण्डुलिपिया मिलती है।

प्रवचनसार की तात्पर्यवृत्ति में आचार्य जयसेना ने उसी शैली को अपनाया गया है जो उसने समयसार की टीका में अपनाया था। उसने टीका में गाथा के शब्दार्थों को अच्छी तरह समझाया है। जयसेन ने गाथा के अर्थ एव भावार्थ को अधिक से अधिक सरल शब्दो मे प्रस्तुत किया है जो उनकी विद्वता का स्पष्ट प्रमाण है। यहा हम एक गाथा द्वारा आचार्य जिनसेन की कुशलता के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं —

आगमहीणो समणो णेवप्पाणं पर वियाणादि।
अविजाणतो अट्ठे खवेदि कम्माणि किघ भिक्खू ।33।

अथागमपरिज्ञान हीनस्य कर्मक्षयण न भवतीति प्ररूपमति—

आगम हीणो समणो णेवप्पाण पह वियाणादि—आगमहीन श्रमणो नवात्मान पर न विजानाति अविजाणतो अट्ठे अविजानन्नर्थान् परमात्मादि पदार्थान् खवेदि कम्माणि किध भिक्खू क्षपयति कर्माणि कथ भिक्षु न कथमपि इति।

इसके बाद उक्त मन्तव्य को विस्तार से समझाया है।

आचार्य जयसेन की टीका मे जैसाकि पहले कहा जा चुका है। अमृतचन्द्र से 36 गाथाये अधिक है। टीकाकार ने अपनी टीका में स्वय ने लिखा है कि अमुक गाथा अमृतचन्द्र की टीका में नही है। अमृतचन्द्र ने उन गाथाओ को क्यो छोडा इसका उन्होने स्वय ने कोई स्पष्टीकरण नही दिया है। जयसेन ने टोका का प्रारम्भ निम्न मगलाचरण के साथ किया है :—

नम परमचैतन्य स्वात्मोत्थसुखसपदे।
परमागमसाराय सिद्धाय परमेष्ठिने।

टीका के प्रारम्भ मे शिवकुमार नाम के श्रावक का उल्लेख किया है। जिनके आग्रह से तात्पर्यवृत्ति लिखी थी। इसी तरह अन्त मे भी अपनो प्रशस्ति के साथ टीका को समाप्त किया है।

इति श्री जयसेनाचार्यकृताया तात्पर्यवृत्तौ एव पूर्वोक्तक्रमेण "एस सुरासुर" इत्याद्येकोत्तरशतगाथापर्यन्त सम्यग्ज्ञानाधिकार:, तदनन्तर "तम्हा तस्स णमाइ इत्यादि त्रयोदशोत्तरशतगाथापर्यन्तं ज्ञेयाधिकारापर-नामसम्यक्त्वाधिकार, तदनन्तर "तवसिद्धे णयसिद्धे इत्यादि सप्तनव-तिगाथापर्यन्त चारित्राधिकारश्चेति महाधिकारत्रयेणैकादशाधिकत्रिशत-गाथाभि. प्रवचनसारप्राभृत समाप्तम् ॥ समाप्तेय तात्पर्यवृत्ति प्रवचन सारस्य।

अज्ञानतमसा लिप्तो मार्गो रत्नत्रयात्मक:।
तत्प्रकाशसमर्थाय नमोस्तु कुमुदेन्दवे ॥1॥
सूरिश्रीवीरसेनाख्यो मूलसघेऽपि सत्तपा।
नैर्ग्रन्थ्यपदवी भेजे जातरूपधरोऽपि य ॥2॥
तत श्री सोमसेनोऽभूदगणी गुणगणाश्रय:।
तद्विनेयोऽस्ति यस्तस्मैजयसेनतपोभृते ॥3॥
शीघ्रं बभूव मालू ? साधु सदा धर्मरतो वदान्य:।
सूनुस्तत साधुमहीपतिर्यस्तस्मादय चारूभटस्तनूज ॥4॥
य सतत सर्वविद. सपर्यामार्यक्रमाराधनया करोति।
स श्रेयसे प्राभृतनामग्रन्थपुष्टात्पितुर्भक्तिविलोपभीरू ॥5॥
श्रीमत्त्रिभुवनचन्द्र निजमतवाराशितायमा चन्द्रम्।
प्रणमामि कामनामप्रवलमहापर्वतैकशतधारम् ॥6॥

जगत्समस्तससारिजीवाकारणवन्धवे ।
सिधवे गुणरत्नाना नमस्त्रिभूनेन्दवे ॥7॥
त्रिभुवनचन्द्र चन्द्र नौमि महासयमोत्तम शिरसा ।
यस्योदयेन जगता स्वान्ततमोराशिकृन्तन कुरुते । 8॥

प्रवचन सरोज भास्कर टीका—प्रभाचन्द्र

प्रवचनसार पर प्रभाचन्द्र की सस्कृत टीका मिलती है। टीका का नाम प्रवचनसरोज भास्कर है। प्रभाचन्द्र ने जयसेन की टीका अनुसरण किया है और गाथा के प्रत्येक शब्द का सस्कृत मे अर्थ दिया है। लेकिन अर्थ का विस्तार जयसेन से कम है। प्रभाचन्द्र नाम के कितने ही विद्वान् आचार्य एव भट्टारक हुये है। प्रवचनसार के टीकाकार कौन से प्रभाचन्द्र थे इसमे सभी विद्वान एक मत नही हैं। डा ए एन उपाध्ये ने प्रवचनसार की प्रस्तावना में प्रभाचन्द्र को 14वी शताब्दी के प्रथम चरण का विद्वान माना है[1] जबकि प परमानन्द शास्त्री ने प्रभाचन्द्र ने सवत 1100 से 1116 के मध्य मे प्रवचन सरोजभास्कर टीका को लिखा था ऐसा मानते हैं। डा नेमिचन्द्र जैन ने प्रभाचन्द्र का समय 11वीं शताब्दी का माना है। उनके द्वारा रचित निम्न ग्रन्थो के नाम गिनाये है जिनमें प्रवचनसार सरोज भास्कर का नाम भी है। 1-प्रमेयकमल मार्त्तण्ड 2-न्यायकुमुदचद्र (3) तत्वार्थवृत्ति पर विवरण (4) शाकटायनन्यास (5) शब्दाभोजभास्कर (6) प्रवचन सरोज भास्कर (7) गद्य कथाकोष (8) रत्नकरण्ड श्रावकाचार टीका (9) समाधितत्र टीका (10) क्रियाकलापटीका (11) आत्मानुशासन टीका (12) महापुराण टिप्पण।

उक्त ग्रथो के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रभाचन्द्र की विद्वत्ता एव व्यक्तित्व दोनो ही महान् थे। तार्किक, दार्शनिक एव आध्यात्मिक विपयो के निष्णात विद्वान थे।

एक प्रभाचन्द्र और भी हुये थे जिन्होने देहली मे फिरोजशाह तुगलक के दरबार में राधोचेतन से विवाद किया था और जैनधर्म की महती प्रभावना की थी। ये 14वी शताब्दी के भट्टारक थे।

---

1. प्रवचनसार—रायचन्द जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित
2. प्रशस्ति सग्रह—प० परमानन्द शास्त्री–पृष्ठ–71

मल्लिषेण की सस्कृत टीका

डा उपाध्ये ने प्रवचनसार की प्रस्तावना मे मल्लिषेण की सस्कृत टीका का उल्लेख किया है लेकिन उसकी पाण्डुलिपि अभी तक किसी शास्त्र भण्डार में उपलब्ध नही हो सकी है। लेकिन उसकी प्रशस्ति वाली एक पक्ति श्री मल्लिषेण कृत टीका 'भद्र भूयात्" के अतिरिक्त उन्हे भी उसकी मूल पाडुलिपि नही मिल सकी है। राजस्थान के किसी भी भण्डार मे मल्लिषेण की टीका वाली पाण्डुलिपि प्राप्त नही हुई है। फिर भी इस टीका की खोज की आवश्यकता है।

बालचन्द्रदेव की कन्नड़ तात्पय वृत्ति

बालचन्द्र देव ने कन्नड भाषा में प्रवचनसार में टीका लिखी थी। यही नही समयसार एव पचास्तिकाय पर भी कन्नड मे टीकाये लिखी हुई मिलती है। बालचन्द्र ने अपने आपको अध्यात्मी बालचन्द्र लिखा है। वे जयकीर्ति राधान्तचक्री (सिद्धान्तचक्री) के शिष्य थे। कवि ने आत्मस्वभाव को प्राप्त कर लिया था। ये सभी मूलसघ, कुन्दकुन्दान्वय देशीगण एव पुस्तक गच्छ के साधु थे। श्रवणबेलगोला के सन् 1142 के शिलालेख में नामोल्लेख हुआ है। डा. उपाध्याय ने बालचन्द्र का समय ईस्वी सन् 1176 से 1231 तक का माना है।

बालचन्द्र की एव जयसेन की टीकाओ में कितनी ही साम्यता है। दोनो ही टीकाओ का नाम समान है यही नही जयसेन एव बालचन्द्र की गाथाओ का अर्थ भाव भी शब्दशः मिलता जुलता है। जयसेन एव बालचन्द ने समान रूप से टीका को प्रारम्भ किया है जो शब्दशः मिलता है।

हिन्दी टीकायें

1. पाण्डे हेमराज बालावबोध भाषा टीका रचना सवत 1709
2. " प्रवचनसार पद्य "
3. हेमराज गोदीका—प्रवचनसार पद्य रचना सवत 1724
4. जोधराज गोदीका प्रवचनसार रचना संवत 1726
5. प. देवीदास प्रवचनसार भाषा 1824

---

1 विशेष जानकारी के लिए डा० उपाध्ये की प्रवचनसार पर लिखी प्रस्तावना देखिये।

6. वृन्दावनदास प्रवचनसार तेरह पथी बडामदिर
स 1905 बाबा दुलीचन्द भण्डार
वे न 51।

प्रवचनसार पर अब तक उक्त छह टीकाये अथवा उसका हिन्दी रूपान्तर हमे प्राप्त हो चुका है। इसमें पाण्डे हेमराज प्रथम पडित थे जिन्होने प्रवचनसार पर हिन्दी गद्य टीका एव पद्यानुवाद दोनो ही लिखने का श्रेय प्राप्त किया।

1 प्रवचनसार भाषा (गद्य)

कविवर बुलाकीदास ने अपने पाडवपुराण मे हेमराज का परिचय देते समय जिन दो ग्रन्थो की भाषा लिखने का उल्लेख किया है उनमे प्रवचनसार भाषा का नाम सर्वप्रथम लिखा है।[1] जिससे ज्ञात होता है कि इस समय हेमराज की प्रवचनसार भाषा अत्यधिक लोकप्रिय कृति मानी जाने लगी थी। महाकवि बनारसीदास द्वारा समयसार नाटक लिखने के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत रचनाओ पर जिस वेग से हिन्दी टीका लिखी जाने लगी थी प्रस्तुत प्रवचनसार भाषा भी उसी का एक सुपरिणाम है।

हेमराज ने प्रवचनसार भाषा आगरा के तत्कालीन विद्वान कौरपाल के आग्रहवश की थी। कौरपाल महाकवि बनारसीदास के मित्र थे तथा उनके साथ कौरपाल ने कुछ ग्रन्थों की रचना भी की थी। बनारसीदास ने जिन पाच आध्यात्मिक विद्वानो का उल्लेख किया है उनमे कौरपाल भी थे।[2] उन्होने हेमराज से कहा कि पाडे राजमल्ल ने जिस प्रकार समयसार की भाषा टीका की थी उसी प्रकार यदि प्रवचनसार की भाषा भी तैयार हो जावे तो जिनधर्म की और भी वृद्धि हो सकेगी तथा ऐसे शुभ कार्य में किंचित

---

1 जिन आगम अनुसार तैं, भाषा प्रवचनसार।
पच अस्ति काया अपर, कीनै सुगम विचार ॥35॥ पाडवपुराण/प्रथम प्रभाव

2 रूपचन्द पण्डित प्रथम, द्वितीय चतुर्भुज जान।
तृतीय भगोतीदास नर, कौरपाल गुणधाम।
धरमदास ए पचजन, मिलि बैठहि इक ठौर।
परमारथ चर्चा करैं, इन्ही के कथन न और। (नाटक समयसार)

भी विलम्ब नही किया जाना चाहिये। हेमराज ने उक्त घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है :—

> बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुनहु कहुं मैं तैसे।
> नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अविकारी ॥4॥
> तिन विचार जिय मे यह कोनो, जे भाषा यह होइ नवीनी।
> अल्पबुद्धि भी अर्थ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै ॥5॥
> यह विचार मन मैं तिन राखी, पाडे हेमराज सो भाषी।
> आगे राजमल्ल ने कीनी समयसार भाषा रस लीनी ॥6॥
> अब जो प्रवचन की ह्वै भासा, तौ जिनधर्म वधै सो साखा।
> ताते करहु विलम्ब न कीजे, परभावना अग फल लीजे ॥7॥

कौरपाल ने अपनी भावना व्यक्त की और उसके फल प्राप्त करने का कवि को प्रलोभन दिया।

हेमराज संवेदनशील विद्वान थे। वे पद्य एव गद्य लेखक दोनो ही थे। गद्य पद्य दोनो में ही उसकी समान गति थी। इसलिये उन्होने भी तत्काल प्रवचनसार को गद्य टीका लिखना प्रारम्भ कर दिया।

> जिन सुबोध अनुसार, अैसे हित उपदेश सो।
> रची भाषा अविकार, जयवती प्रगटहु सदा ॥9॥
> हेमराज हित आनी, भविक जीव के हित भणी।
> जिनवर आनि प्रवानि, भाषा प्रवचन की कही ॥10॥

कवि ने प्रवचनसार की जब रचना की थी उस समय शाहजहाँ बादशाह का शासन था। जिसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

> अवनिपति वदहि चरण, सुनय कमल विहसत।
> साहजिहा दिनकर उदै, अरिगन तिमिर नसत ॥

प्रवचनसार की गद्य टीका कवि ने कब प्रारम्भ की इसका तो कोई उल्लेख नही मिलता लेकिन वह सवत 1709 मे समाप्त हुई ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है—

> सत्रहसे नव उत्तरे, माघ मास सित पाख।
> पचमि आदितवार को, पूरण कीनी भाष ॥16॥

प्रवचनसार मूल आचार्य कुन्दकुन्द की प्रमुख कृति है। इस पर आचार्य अमृतचन्द ने सस्कृत मे तत्व प्रकाशिनी टीका लिखी थी। यह एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है जिनमे तीन अधिकार है। जिनमें ज्ञान, ज्ञेयरूप तत्वज्ञान के कथन के साथ जैन साधु आचार का बडा ही रोचक एव प्रभावक कथन किया गया है। ग्रन्थ की भाषा प्राचीन प्राकृत है जो परिमार्जित है। यही नही इसकी भाषा उनके अन्य सभी ग्रन्थो से प्रौढ है तथा गभीर अर्थ की द्योतक है। इसका दूसरा अधिकार ज्ञेयाधिकार नाम से है जिनमे ज्ञय तत्वो का सुन्दर विवेचन किया गया है। प्रवचनसार का तीसरा अधिकार चारित्राधिकार है। प्रवचनसार पर जयसेन की सस्कृत टीका भी अच्छी टीका मानी जाती है। प्रवचनसार की गद्य टीका तत्कालीन हिन्दी गद्य का अच्छा उदाहरण है।

पाडे हेमराज ने प्राकृत गाथाओ का पहिले अन्वयार्थ लिखा है और फिर उसी का भावार्थ लिखा है। भावार्थ बहुत अच्छा गद्य भाग बन गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है —

"जो मोक्षाभिलापी मुनि है ताको यौ चाहिये कै तो गुणनि करि आप समान होइ कै, अधिक होई असे दोई की करे और की न करै। जैसे सीतल घर के कौने मे सीतल जल जल राखे ते सीतल गुण की रक्षा ही है तैसे अपने गुण समान की सगति स्यो गुण की रक्षा ही है। और जेसे अति सीतल बरभ मिश्री कर्पूरादि की सगति स्यो अति सीतल हो है तैसे गुणाधिक पुरुष की सगति स्यो गुण वृद्धि हो है तातै सत्सग जोग्य है। मुनि को यो चाहिये प्रथम दशा विषै यह कही जु पूर्व ही शुभोपयोग तं उत्पन्न प्रवृत्ति ताको अगोकार करै पाछै क्रमस्यो सयम की उत्कृष्टता करि परम दशा कौं धरे पाछे समस्त वस्तु की प्रकाशन हारी केवलज्ञानानद मयी शास्वती अवस्था को सर्वथा प्रकार पाइ अपने अतीद्रिय सुख को अनुभव हु यह शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुआ।

पृष्ठ सख्या 228

प्रवचनसार की पचासो पाण्डुलिपियां राजस्थान के विभिन्न ग्र थागारो में सुरक्षित है। सवत 1728 में लिपिबद्ध एक पाण्डुलिपि हमारे सग्रह मे उपलब्ध है।

2-प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार की हिन्दी गद्य टीका का ही अभी तक विद्वानो ने अपने अपने ग्रंथो एव शोध निबधो मे उल्लेख किया है लेकिन इनकी प्रवचनसार पर पद्य टीका का कही उल्लेख नही मिलता। प परमानन्द जी शास्त्री जैसे हिन्दी के विद्वान ने भी हेमराज की गद्य वाली टीका का ही नामोल्लेख किया है। लेकिन सौभाग्य से मुझे इसकी एक पद्य टीका वाली पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है जिसका परिचय निम्न प्रकार है :—

हेमराज ने प्रवचनसार का पद्यानुवाद भी इसी दिन समाप्त किया जिस दिन उसकी गद्य टीका पूर्ण हुई थी जिससे ज्ञात होता है कि उसने प्रवचनसार पर गद्य पद्य टीका एक ही साथ लिखी थी। लेकिन जब उसकी गद्य टीका की पचासो पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध होती है तब प्रवचनसार पद्य टीका की अभी तक पाण्डुलिपि उपलब्ध न होवे यह बात समझना कठिन लगता है। इसका उत्तर एक यह भी दिया जा सकता है कि खन्डेलवाल जातीय दूसरे हेमराज ने भी पद्यानुवाद लिखा है इसलिये आगरा निवासी हेमराज के पद्यानुवाद को कम लोकप्रियता प्राप्त हो सकी।

पद्य टीका में 438 पद्य है जिनमे अतिम 11 पद्य तो वे ही हैं जिन्हे कवि ने प्रवचनसार गद्य टीका के अन्त मे लिखे है। प्रस्तुत कृति का प्रारभिक अश निम्न प्रकार है।

छप्पय—

स्वयं सिद्ध करतार, करै निज करम सरम निधि,
आपै करण स्वरूप होय साधन साधै विधि।
सप्रदानता धरै आपको आप समप्पै।
अपादान तै आप आपको कर थिर थप्पे।
अधिकरण होय आधारनिज वरतै पूरण ब्रह्म पर।
षट् विधि कारकमय रहित विविध येक विधि जर अमर ॥1॥

दोहा—

महातत्व महनीय यह, महाधाम गुणधाम।
चिदानंद परमातमा, वंदू रमता राम ॥2॥

कुनय वचन सुवचानि श्रवनि, रभिनि स्यात पद सुद्ध ।
जिनवानी मानी मुनिय, घर मे करोहू सुबुद्धि ॥3॥

चौपई—

पच इष्टपद के पद वदौ, सत्यरूप गुर गुण अभिनदौ ।
प्रवचनसार ग्र थ की टीका, बालबोध भाषा मयनीका ॥4॥

प्रवचनसार के तीन अधिकारो मे से प्रथम अधिकार मे 232 पद्य, तथा शेष 206 पद्यो मे दूसरा एव तीसरा अधिकार है ।

भाषा अत्यधिक सरल, सुबोध एव मधुर है । प्रवचनसार के गूढ विषय को कवि ने बहुत ही सरल शब्दो मे समझाया है । कोई भी पाठक उसे हृदयगम कर सकता है ।

प्रवचनसार पद्य टीका की एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के शास्त्र भण्डार मे सग्रहित है । इसमे 35 पत्र है तथा अतिम पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री प्रवचनसार भाषा पाडे हेमराज कृत सपूर्ण 1 लिखत दलसुख लुहाडिया लिखी सवाई जयपुर मध्ये लिखी ।

प्रवचनसार पद्य—हेमराज गोदीका

जोधराज गोदीका सागानेर के रहने वाले थे । उनके पिता का नाम अमराभौसा था जो तेरहपथ के प्रमुख सस्थापक थे । जोधराज बडे भारी कवि थे तथा प्रवचनसार सहित कितने ही ग्र थो के रचयिता थे । सम्यक्त्व कौमुदी उनकी प्रमुख रचना मानी जाती हैं ।

इन्होने सवत 1726 मे प्रवचनसार भाषा की रचना की थी । ग्र थ की प्रशस्ति मे कवि ने लिखा है कि प्रवचनसार की रचना सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी । फिर उस पर अमृतचन्द्र ने टीका लिखी । अमृतचन्द की टीका को देखकर हेमराज ने हिन्दी में प्रवचनसार का गद्य पद्यानुवाद किया । इसके पश्चात् जोधराज ने सवत 1726 में उसका फिर हिन्दी मे पद्यानुवाद करके एक और रचना में अभिवृद्धि की थी ।

प्रवचनसार का आदि अन्तिम भाग निम्न प्रकार है :—

प्रारम्भिक मगलाचरण :—

परम ज्योति परमात्मा नमो सुद्ध परधान ।
एक अनुपम जोध कहि सिव दायक सुखधान ॥

प्रशस्ति

कुंदकुंद मुनिराज कृत, पूरन भयौ बखान ।
अब कवि को व्यवरन कहौ, सुनहु भविक धरि कान ॥
मूल ग्रंथ करता भये, कुंदकुंद मुनिराय ।
तिन प्राकृत गाथा करी, प्रथम महा सुख पाय ॥
तिन ऊपर टीका करी, अमृतचन्द्र सुख रूप ।
सहसकृत अति ही सुगम, पडित पूज्य अनूप ॥
ता टीका को देखि कैं, हेमराज सुखधाम ।
करी बचनिका अति सुगम, तत्त्व दीपिका नाम ॥
देख बचनिका हरषियौ, जोधराज कविनाम ।
तब मन मैं इह धारिकैं, कीये कवित सुखधाम ॥
सत्रह से छबीस सुभ, विक्रम साक प्रमान ।
अरु भादो सुदि पत्रमी, पूरन ग्रंथ बखान ॥
सुनय धरम महि सुख करन सब भूपनिसिर भूप ।
मान बस जयस्यध सुत, रामस्यध सुख रूप ॥
ताके राज सु चैन सौं कीयो ग्रंथ यह जोध ।
सगानेरि सुथान मे, हिरदे धारि सुबोध ।
जो कहू मेरी चूक ह्वै, लीज्यो सत सुधारि ।
घरणछन्द को देपि कैं गुण औगुण सुविचारि ॥
यहां मिश्र हरिनाभजी रहौ सदा सुखरूप ।
ताको संगति जो करी, पायो काव्य सरूप ॥

सवैया—

कोई देवी खेतपाल बीभासनि मानत है,
कोई गनी पिथ सीतला नो कहै मेरा है ।
कोई कहै सावलो कबीर पद कोई गावै,
कोई दादू पंथी होय परे मोह घेरा है ।

कोई ख्वाजै परिमानँ कोई पथी नानिग के,
केई कहै महावाहु महारुद्र चेरा है।
याही बारा पथ मैं भरमि रह्यो सत्रै लोक,
कहै जोध अहो जिन तेरापथी तेरा है।

इति श्री प्रवचनसार सिद्धान्ते जोधराज गोदीका विरचिते कवि वर्णन नाम द्वादश प्रभाव। सवत 1846 का कातिक सुदी 12 शुक्रवार सवाई जयपुर मैं लिख्यौ अमल महाराजाधिराज श्री सवाई प्रतापसिंह जी का मे पुस्तक जोधराज गोदीका की है सवत 1726 को लिख्यौ तीसु लिखी पुस्तक जीवणराम गोधा रैणी का को। लिखत कन्हीराम वाकलीवाल सपतरामगोधा।

जयपुर के वडे मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे एक पाण्डुलिपि सवत १७८५ की है जो जोधराज गोदीका द्वारा लिखवायी गयी थी। जोधराज को पुण्य पवित्र लिखा है। लेकिन यह प्रति अपूर्ण है प्रारम्भ के तथा ५५ से ५९ तक के पद्य नही है।

प जोधराज गोदीका ने प्रवचनसार का पद्यानुवाद बहुत सरल किंतु गम्भीर अर्थों को लिये हुये किया है। वे गाथा का पद्य लिखने के पूर्व हिन्दी गद्य में उसके उद्देश्य की ओर सकेत करते है। उनकी गद्य शैली भी बहुत आकर्षक एवं उपादेय है। एक वर्णन देखिये—

आगे यह कहै है जु उतपाद विय ध्रौवि दर्वि का सरूप है तातै सर्व दर्वनि विषै है जाते आतमा विषै भी अवस्य है।

दोहा—

सबै दरबि उतपाद विय, नय परजाय कहाव।
ध्रुव निहचै नय जिन कहै, सत्ता रूप सुभाव ॥१॥
नाम देव परजाय कौ, उपजन जन परजाय।
दोऊ मैं आतम वहै, यहै कहै जिनराय ॥२॥
कुंडलादि उतपाद ज्यौं, कट्टक मुद्रिका नाए।
दोऊ मे कचन वहै, इह दिसरात प्रकास ॥३॥
ध्रुव वय अरू उतपाद, यह दरविनि नाम कहाव।
तातैं ध्रुव उतपाद वय, श्रय जुत दरवि सुभाव ॥४॥

इह विधि जौ नहि मानिये, होय दरबि कौ नास ।
दरबि नाम जग नाम सब, इह जिनमत परकास ॥५॥
तातै ध्रुव उतपाद विय, दरबि सबै जग माहि ।
इह मानै जग थिति सधै, कहै जोध सक नाहि ॥६॥
पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि जैन मन्दिर
बडा तेरहपंथीयान जयपुर ।

प्रवचनसार भाषा टीका—देवीदास कृत

17वी शताब्दी में समयसार के समान प्रवचनसार का भाषानुवाद भी तेजी के साथ होने लगा। बनारसीदास ने जिस प्रकार समयसार को पद्यो में गूंथ दिया इसी तरह प हेमराज ने प्रवचनसार को हिन्दी गद्य एवं पद्य दोनो में अनूदित कर अध्यात्म जगत का महान उपकार किया। बनारसीदास के समयसार की रचना के 16 वर्ष बाद प्रवचनसार पर विशद एवं गम्भीर अर्थ की द्योतक भाषा टीका लिखी। पाण्डे हेमराज एव प. जोधराज गोदीका के पश्चात् पडित देवीदास इस क्षेत्र में आगे आये और उन्होने सवत् 1824 सावन सुदी 8 सोमवार को दुगौडौ ग्राम में प्रवचनसार की हिन्दी पद्य मे टीका लिखी।

प० देवीदास दुगौडौ ग्राम के निवासी थे। उनके पिता सतोषमनि थे। वे गोलालारे **खरौवा वश** के श्रावक थे। उस समय तक गोलालारे प्रमुख जाति थी और उसमें खरौवा एक वश अथवा गोत्र था लेकिन कालान्तर मे यह खरौवा गोत्र स्वतन्त्र जाति बन गयी जिसको 84 जैन जातियो मे गिना जाने लगा। कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

ओडछे कौ देसु जहा के सुहटे सिध राजा
दुगौडौ सुग्राम जामै जैनी की धुकार है ।
तहां के सुवासी सतोषमनि सुगोलागारे
खरौवा सुवेस जाकै धर्म विवहार है
तिन्ही के सुपुत्र देवीदास तिन्ही पूरौ करे
ग्र थ यह नाम याको प्रवचनसार है
सवतु अठारासै सुचौवीस की सु साल
सावन सुदी सु आठै परचौ सोमवार है ॥10॥

इसके पूर्व कवि ने प्रवचनसार के इतिहास पर निम्न प्रकार प्रकाश डाला है—

प्रवचनसार यो गरथ जाके, करता कुंदकुंद मुनिराज भये प्राकृत के ।
जाकौ सब्द कठिन करिकै सुसस्कृत कीनौ अमृतचंद ने सुधारी महाव्रत के ।
तिन्ही की परपरा सौ पाडे हेमराज जी ने, वालबोध टीका देखि कह्यौ सोई मत के ।
जाकौ भेद पाइ देवीदास मुनि भाषा धरयौ
माखन तें होत जैसें करतार घ्रत के ।।7।।

चौपाई

प्रवचनसार कौसु यह टीका, भाषा बालबोध अति नीका ।
जाके पढत सुनत सुख पायो, करि सु कवित्त बध समुझायो ।।8।।

दोहरा

अगम अपार अथाह है यह गरथ गनवत ।
मैं मतिहीन कहा कहौं, गणधर लह्यौ न अत ।।9।।

पूरे प्रवचनसार मे 419 छन्द है जिनका विभाजन निम्न प्रकार है—

सवैय्या इकतीसा	—	143
कवित्त छन्द	—	63
छप्पय	—	44
तेईसा कवित्त	—	41
चौपाई	—	36
दोहरा	—	80
कुडौरी	—	14
अरिल्ल	—	8
गीतिका	—	3
साकिनी	—	1
सोरठा	—	1

लेकिन छन्दो की उक्त सख्या 434 आती है जो कवि द्वारा प्रयुक्त छन्द से मेल नही खाती । छन्द निम्न प्रकार है—

एकुसैसु तेतालीस कहे इकतीसा सवै त्रेसठि,
कवित्त छन्द छप्पै चवालीस है ।

तेईसा कवित्त जेसु धरे इकतालिस जे
चौपही सुछन्द तेसु सात उनतीस है।
दोहरा सु असी कौडरीसु जे चतुर्दस है।
आठ है अरिल्ल तीन गीतकासु दीस है
साकिनी सु एक एक सोरठा जुरे समस्त
छन्द–जाति भेद चारिसेसु ये उनीस है ।।3।।

कवि ने आगे लिखा है कि यदि 32 अक्षरो का अनुष्टप माना जावे तो ग्रन्थ की श्लोक सख्या 1500 होगी।

प्रारम्भ मै 24 तीर्थंकरो की एक छन्द मे स्तुति, भूत एव भविष्य मे होने वाले तीर्थङ्करो की वन्दना, विरहमान बीस तीर्थंकरो की स्तुति, पचपरमेष्ठियो को स्तुति, ग्रन्थ रचने मैं अपनी लघुता, आदि वर्णन के पश्चात् कवि ने प्रवचनसार के अधिकारो का निम्न प्रकार वर्णन किया है—

महाग्यान कौ सु अधिकार सोहै प्रथम ही,
अधिकार दूसरौ अतिंद्री सुख भोग कौ।
ग्यान तत्व दरव सामान्य गेय अधिकार
आचर्न कौमुद्वार जती कीध रोग को
मोख पथ धारो सुद्धोपयोगी को अधिकार
और अधिकार भारी सुभ उपयोग कौ।
देवीदास कहै मै सु थोरी बुद्धि सौ बखानौ
ग्रन्थ यौ खजानौ जानौ चरनानजोग कौ ।।38।।

दोहरा

पंच रत्न सिद्धान्त कौ मुकुट अत जे और
तिन्ह समेत अधिकार दस सुनौ भव्य सुख ठौर ।।39।।

कवि ने प्रत्येक गाथा का सार गर्भित हिन्दी पद्य मे अर्थ लिखा है। जो अत्यधिक सराहनीय है। प्रस्तुत हिन्दी पद्य टीका अभो तक अप्रकाशित है तथा यह द्विसहस्राब्दी वर्ष में प्रकाशन योग्य है।

इस ग्रन्थ को एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के तेरहपथी बडे मन्दिर मैं सग्रहीत है।

प्रवचनसार भाषा टीका—वृन्दावन दास

प्रवचनसार पर हिन्दी भाषा टीका लिखने वालो में प हेमराज, प जोधराज गोदीका, प देवीदास का पहिले परिचय दिया जा चुका है। प्रस्तुत परिचय वृन्दावनदास का नाम जैन जगत मे बहुत प्रसिद्ध रहा है। विगत200वर्षो से उनकेद्वारा रचित चौबीस तीर्थंकर पूजा समस्त जैन समाज में बहुत लोकप्रिय है और जो भी जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है वह भगवान के साथ वृन्दावन का नाम भी लेता है। उनकी सकट हरण विनती हजारो श्रावक श्राविकाओ को कठस्थ याद है।

प्रवचनसार भाषा वृन्दावन कवि की प्रमुख रचना है। इसमे कवि ने गाथाओ का जो हिन्दी पद्य मे अर्थान्तिर किया है वह अत्यधिक सरल एव समझ में आने वाला है। यहा हम एक गाथा को पाठको के अवलोकनार्थ उद्धृत कर रहे है।

प्राकृत—जो ण विजाणदि जुगव, अत्थे तिक्कालिगे तिहुवणत्थे
णादु तस्स ण सक्क सपज्जय दव्वमेग वा ।।48।।

सस्कृत –यो न विजानाति युगपदर्थान् त्रैकालिकान् त्रिभुवनस्थान्
ज्ञातु तस्य न शक्य सपर्यय द्रव्यमेक' वा ।।

मनहरण छन्द

तीनो लोक माहि जे पदारथ विराजै तिहु काल के अनत नत
जासु मैं विभेद है।
तिनको प्रत्यक्ष एक समै एकै बार, जो न जानि सकै स्वच्छ
अन्तर उछेद है।
सो न एक द्रव्य हू कौ सर्व परजाय जुत जानिवे की शक्ति
धरै ऐसे भणै वेद है।
तातै ग्यान छायिक की शक्ति व्यक्त, वृन्दावन, सोई लखै
आपापर सर्व भेद छेदेहे।

कवि वृन्दावन ने प्रवचन सार भाषा को सवत 1904 जेठ महिने मे लिखना प्रारम्भ किया और सवत 1905 वैशाख शुक्ला तृतीय को इसे

पूरा किया। अर्थात् साढे ग्यारह महिने मे उन्होने एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ का हिन्दो भाषानुवाद करने मैं सफलता प्राप्त की।[1]

वृन्दावनदास बनारस के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम धर्मचन्द्र था जो गोयल गोत्रीय अग्रवाल जाति के श्रावक थे। इनके एक भाई एव दो पुत्र थे। भाई का नाम महावीर एव पुत्रो का नाम अजितदास एव शिखरचन्द था। उदंराज लमेचू ने इनके ग्रन्थ प्रवचनसार का सम्पादन किया था। जिसका कवि ने सम्मान के साथ उल्लेख किया है। प्रवचनसार भाषा का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है :—

सिद्ध सदन बुधि वदन मदन मद कदन दहन रज,
लवधि लसत अनन्त चारुगुणवत सत अज।
दुविधि धर्मनिधि कथन अविधि तम मथन दिवाकर
विघन निघ्न करतार सकल सुख उदय सुधाकर
शत इन्द वृन्द पद वदि भवि दद फद निकद कर।
अरि शेष मोष मग पोष निरदोष जयति जिनराज वर।।

ग्रन्थ प्रशस्ति विस्तृत है लेकिन वह कवि के जीवन वृत्त को जानने के लिये उपयोगी है इसलिये हम यहा पूरी प्रशस्ति दे रहे है —

छप्पय –

जो यह शासन भली भाति जानै भवि प्राणी
श्रावक मुनि आचारण जासु मधि सुगुरु वखानी।
सो थोरे ही कालमाहि शुद्धातम पावै।
द्वादशाग को सार भूत जो तत्व कहावै।
मुनि कु दकु द जयवत जिन यह परमागम प्रगट किय।
वृन्दावन को भव उदधि ते दे अवलब उधार लिय ।।१९।।

---

1. चारि अधिक उनईशसौ समत विक्रम भूप।
जेठ महीने मै कियो, पुनि आरम्भ अनूप ।।5।।

पांच अधिक उनईशसो, द्योस तीज वैशाख।
यह रचना पूरण भई, पूजी मन अभिलाष ।।6।।

छप्पै :— द्वादशाग श्रुत सिंधु मथन करि रतन निकासा।
स्वपर भेद विज्ञान शुद्ध चारित्र प्रकासा।
सो इस प्रवचनसार माहि गुरु वरणन कीना।
अध्यातम को मूल लखहि अनुभवी प्रवीना।
मुनि कुन्दकुन्द कृत मूल जु सु अमृतचन्द्र टीका करी।
तसु हेमराज ने वचनिका रची अध्यातम रस भरी ।।97।।

छन्द मनहरन :—

दो सौ पंचिहत्तर पराकृत की गाथा माहि
कुन्दकुन्द स्वामी रची प्रवचनसार है।
अध्यातम वानी स्याद्वाद को निशानी।
जातें स्वपर प्रकाश बोध होत निरधार है।
निकट सुभव्यही के भाव भौन माहि यांकी
दीपशिखा जगै भगै मोह अन्धकार है।
मुख्य फल मोक्ष, औ अमुख्य शक्र चक्र पद।
वृन्दावन होत अनुक्रम भव पार हैं।98।

अथकवि व्यवस्था नाम कुलादि---

अग्रवाल कुल गोयल गोत वृन्दावन धरमी।
धरमचन्द जसुमति सितावो माता परमी।
तिन निज मत मितवाल ख्याल सम छन्द बनाये
काशी नगर मझरि सुपर हित हेत सुभाये।
प्रिय उदैराज उपगार तैं अब रचना पूरण भई।
हीनाधिक सोध सुधारियौ जे सज्जन समरस मई।99।

अथ व्यवस्था कथन—मनहरण छन्द

वाराणसी आरा ताके वीचि बसै वारा सुरसरी
के किनारा तहां जनम हमारा है।
ठारै अडताल माहि सेत चौदे सोम पुष्प
कन्या लगन भानु अंश सत्ताईस धारा है।

साठे माहि कासी आये तहां सत सग पाये ।
जैनधर्म मर्म लहि भर्म भाव रास है
शैली सुख दाई भाई काशीनाथ आदि जहा
अध्यातम वाणो की अखण्ड बहै धारा है ।100।

छप्पय - प्रथमही आढतराम दया मौर्य चित लाये ।
सेठी श्री सुखलाल जीय सौ आनि मिलाये ।।
तिनपै श्री जिनधर्म मर्म हमने पहिचानै
पीछै वकसूलाल मिले मोहि मित्र सयानै ।
अवलोके नाटक त्रयी औरहु ग्रन्थ अनेक जब
तब कविताई परि रूचि बढी रचौ छद भवि वृन्द अब ।।101।

सवत विक्रम भूप ठारसौ त्रेसठि माही,
यह सब वानक् बन्यौ मिली सत सगत छाही
तब श्री प्रवचनसार ग्रन्थ कौ छद बनायो
यही आस उर रही जासु त निज निधि पावौ ।
तब छद रची पूरण करी चित्त न रुची तत्र पुनि रची ।
सोऊ न रुची तब अब रची अनेकात रस सौ मची ।102।
इति श्री अध्यातम सम्पूर्ण ।

दोहा :— यामैं हीनधिक निरखि मूल ग्रन्थ कौ देखि ।
शुद्धि कीजिये सुजन जान, व्याल बुद्धि मम पेषि ।।103।।
यह मुनि शुभ चारित्र की पूर्ण भयो अधिकार ।
सो जयवत रहो सदा, ससि सूरज उनिहार ।।104।

अथ कवि वंसावली लिख्यते ।
छद कवित्त मात्रा 30 ।।
मार्गशीर्ष गत दोय और पन्द्रह अनुमानो
नारायण विच चन्द्र जानि औ सतरह जानौ
इसी बीच हरिवसलाल बाबा गृह जीये ।
नाम सहारूसाह साह जू के कहलाये ।।105।

बाबा हीरानन्द साह सदर सुत तिनके
पंच पुत्र धन धर्मवान गुण जुत थे इनके

प्रथमे राजाराम बबा फिर अभेराज सुनु ।
उदैराज उत्तम सुभाव आनन्द मूर्ति गुनु ।।106।।

भोजराज चोथे कहो जोगराज पुन जानियो ।
इनि पितु लग काशी निवास अचल मानिगो ।
अब बाबा खुसिहालचद सुतु का सुतु वरनन
सीताराम सुग्यानवान बदौ तिन चरनन ।।107।।

ददा हमारे लाल जीवो कुल औगुण खडित ।
तिन सुत धर्मचद मो पितु सत्र सुभ जग मडित ।
तिनको दाश कहाय नाम मो वृन्दावन है ।
एक भ्रात औ दोय पुत्र मोको यह जन है ।।108।।

महावोर है भ्रात नाम सो छोटा जानौ
ज्येष्ठ पुत्र को नाम अजित इमि करि परिमानौ ।
मो लघु सुत है शिखर चद सुन्दर सुते जेष्ठ के ।
इमि परिपाटी जानियै कह्यौ नाम लघु श्रेष्ठ को ।।109।

मगशिर सित तिथि तैरसि कासीमै तब जानौ ।
विक्रमाब्द गत सतरहसै नव विदित सुजानौ ।।110।।

आगे यह श्री प्रवचनसार जी की भाषा छद बध रची गई है तिस्मी जीन जौन साधर्मी भाई का उपकार है सो लिखि करि समत मिति सुधाँ लिखिक समाप्त करै है ।

पद्धड़ी छन्द

सम्मत चौरानू मैं सुआय, आरे ते परमेष्ठी सहाय ।
अध्यातम रग पगे प्रवोण, कविता मैं मन निश धौस लीन ।111।

सज्जन ता गुण गुरुवे गभीर, कुल अग्रवाल सुविशाल धोर ।
ते मम उपकारी प्रथम पर्म, साचे सरधानो विगत मर्म ।।112।।

भैरव प्रसाद कुल अगवाल, जैनी जाती वुध है विशाल
सोऊ मोपै उपकार कीन, लखि भूलि चूकि सो शोध दोन ।113।

छप्पय .—

सीताराम पुनीत तात जस मातु हुलासो ।
ग्यात लमेचू जैनधर्म कुल विदित प्रकाशौ ।

तसु कुल कमल दिनद आत मम उदैराज वर।
अध्यातम रस छके भक्त जिनवर के दिढतर।

तै उपकारी हमको मिले अब रचना मै भावसौ।
तब पूरण भयौ गरथ यह वृन्दावन के चावसौ ।।114।

दोहा

चारि अधिक उनईशसौ समत विक्रम भूप।
जेठ महीने मै कियो, पुनि आरम्भ अनूप ।।115।।

पाच अधिक उनईशसौ, घोसतीज वैशाख
यह रचना पूरण भई, पूजी मन अभिलाष ।।116।।

इति श्रीमत स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य जी कृत परमागम श्री प्रवचन-सार जी की मूलगाथा ताकी सस्कृत टीका श्री अमृतचन्द्राचार्य जी तै रची। ताको देश भाषा वचनिका पाण्डे हेमराज जी नै रची है ताही के अनुसरि सौ वृन्दावन अगवाल गोयल गोती नै भाषा छन्द रची। तहा यह मुनि शुभ चारित्राधिकार समाप्त। सर्व गाथा 275 भापा के छंद सर्व 1094 एक हजार चौरानवे भये सो जंवत होहु।

इति श्री प्रवचनसार जी छद बंध भाषा वृन्दावन जी कृत समाप्त श्री वैशाख बदि 2 रविवार सवत 1927 को सालि।

प्रस्तुत पाण्डुलिपि लिखवाने वाले श्रावक का परिचय :—

गोपाचल के निकट ही, लसकर सहर विशाल।
सीमत जियाजीराव जह, करत राज भुवपाल ।।1।।

तहा कचोडीमल्ल इक सेठ गोत्र गगवाल
तिन सुत हीरालाल जी धारत धर्म रसाल ।।2।।

तिन लिखवायौ गन्थ यह, प्रवचनसार महान।
लेखक मौजीलाल पै, महा पुण्य की ख्यानि ।।3।।

नित प्रति भवि वाँचौ सुनो, करि परिणाम उदार।
प्रापति हू है ग्यान की, पाप होय सब छारि ।।4।।

वर्तमान शताब्दी में समयसार की अपेक्षा प्रवचनसार पर कम काम हुआ है। प्रवचनसार का सर्व प्रथम प्रकाशन सन 1912 में हुआ जिसका

सम्पादन प० मनोहरलाल जी शास्त्री ने किया। इसके पश्चात सन 1935 डा. ए. एन उपाध्ये ने उस पर अ ंगेजो में 125 पृष्ठों की प्रस्तावना लिख कर परमश्रुत प्रभावक मण्डल द्वारा प्रकाशित कराया गया। डा उपाध्ये की महत्वपूर्ण प्रस्तावना का पाश्चात्य विद्वानो पर गहरा प्रभाव पडा। सन 1971 मे आचार्य ज्ञानसागरजी द्वारा गाथाओ का सस्कृत एव हिन्दी मे पद्यानुवाद सहित किशनगढ रेनवाल से श्री महावीर प्रसाद सागाका पाटनी द्वारा प्रकाशित कराया। प्रवचनसार के भावनगर, एव बम्बई से भी बिभिन्न सस्करण प्रकाशित हुये। हमारे छोटे भाई वैद्य प्रभूदयाल कासलीवाल ने भी अभी कोई पाच वर्ष पूर्व (सन 1984) में प्रवचनसार का हिन्दी पद्यानुबाद किया है जिसका प्रकाशन सरस्वति गन्थमाला जयपुर से हो चुका है। इसमे 275 पद्य है।

———

नियमसार

नियमसार आचार्य कुन्दकुन्द का महत्वपूर्ण ग्रंथ है और इसको भी वही स्थान प्राप्त है जो उनके समयसार, प्रवचनसार एव पचास्तिकाय जैसे ग्रंथो को मिला हुआ है। नियम का अर्थ मोक्ष का उपाय है और इस उपाय का फल परिनिर्वाण की प्राप्ति है इसलिये इस ग्रंथ मे सम्यग्दर्शन ज्ञान एव चरित्र का भेद करके उनका प्रत्येक का निरूपण किया गया है ।

सर्वप्रथम आचार्यश्री ने मगलाचरण मे स्पष्ट लिखा है कि केवल ज्ञानियो एव श्रुतकेवलियो द्वारा कहे गये नियम का ही वे वर्णन करेगे। वे कहते है कि मोक्षमार्ग और मोक्षफल ये दो जिन शासन मे कहे गये है। मानव जीवन मे ज्ञानदर्शन चारित्रात्मक कार्य नियम मे करने योग्य है इसलिये उसके सार को इसमे वर्णन किया गया है जो विपरीत का परिहार करने वाला है। नियम शब्द का लक्षण करते हुये आचार्य ने कहा है कि नियम का अर्थ मोक्ष का उपाय है और उसका फल मोक्षप्राप्ति है। इस रत्नत्रयात्मक नियम के प्रत्येक भेद का वर्णन किया जावेगा। आप्त, आगम एव तत्वो की श्रद्धा से सम्यकत्व होता है। जिसके अशेष दोष दूर हो गये है वही आप्त हैं।

इसके पश्चात क्षुधा, तृषा, भय, रोष आदि 18 दोषो के नाम गिनाये है। इस प्रकार के जो अशेष दोषो से रहित है तथा केवल ज्ञानदि परम वैभव से युक्त हैं वही परमात्मा है तथा उससे विपरीत है वह परमात्मा नही है ऐसे परमात्मा के मुख से निकली हुई वाणी आगम कहलाता है तथा जो पूर्वापर दोष से रहित है। जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये तत्वार्थ है जो विविध गुण पर्यायो से सयुक्त है। जीव का लक्षण बताते हुये कहते हैं कि जीव उपयोगमय है। यह उपयोग ज्ञान दर्शनमय है। तथा वह ज्ञानोपयोग स्वभाव एव विभाव रूप से दो प्रकार का है। जो ज्ञान केवल, इन्द्रिय रहित एव असहाय है उसे स्वभाव ज्ञान कहा जाता है। सम्यग्ज्ञान एव मिथ्याज्ञान के भेद से विभाव ज्ञान दो प्रकार का हैं। ज्ञानोपयोग की तरह दर्शनोपयोग भी स्वभाव और विभाव भेद से दो प्रकार का है। जो केवल, इन्द्रिय रहित और असहाय हैं वह स्वभाव दर्शनोपयोग है। चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन एव अवधिदर्शन ये तीनो

विभाव दर्शन कहे गये है। पर्यायभी दो प्रकार को है एक स्वपरापेक्ष एव निरपेक्ष। मनुष्य, नरक, तिर्यञ्च और देव ये विभाव पर्यायें है तथा कर्मोपाधि रहित पर्यायें स्वभाव पर्यायें कही गई हैं।

मनुष्य दो प्रकार के है एक कर्मभूमिज दूसरे भोगभूमिज। पृथवी के भेद से नरकादि सात प्रकार के है। तियन्चा के चौदह भेद तथा देव समूह के भवनवासी, व्यतर ज्योतिष्क और काल्पवासी भेद से चार भेद है। आत्मा व्यवहार से पुदगल कर्म का कर्ता भोक्ता है तथा निश्चय से कर्म जनित भाव का कर्ता भोक्ता है। अन्त मे आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा कि द्रव्यार्थिक नय से जीव पूर्व कथित पर्याय से शून्य है तथा पर्यायार्थिक नय से वह उस पर्याय से सयुक्त है।

अजीव का वर्णन करते हुये कहा गया है कि पुदगल द्रव्य परमाणु और स्कध से दो प्रकार का है। स्कन्ध पुद्गल छह प्रकार का तथा परमाणु दो भेद वाला है। इसके पश्चात पुद्गल द्रव्य के भेद उपभेदो की चर्चा करने के पश्चात धर्म अधर्म आकाल और काल द्रव्य के स्वरूप का वर्णन किया गया है।

इसके आगे शुद्ध भावाधिकार का वणन किया गया है। सर्व प्रथम जीवादि बाह्यतत्व को हेय तथा कर्मोपाधिजनित गुण पर्यायो से रहित आत्मा उपादेय है ऐसा कहा गया है। इसके पश्चात आत्मा सभी भावो से रहित है तथा वह निर्दण्ड, निर्द्वन्द निमम, नि शरीर, निरावलव, निराग, निर्दोष एव निर्भय है। वह नि ग्रन्थ, निराग, नि शल्य, नि क्रोध, निर्मान और निर्भर है। यह परम स्वभाव भूत आत्मा में समस्त पौद्गलादि विकार समूह नही है। सिद्धआत्माओ के समान ही ससारी आत्माये है जो उनके समान जन्म जरा मृत्यु आदि से रहित तथा आठ गुणो से अलकृत है। इसी तरह जैसे लोक के अग्रभाग मे स्थित है सिद्ध भगवन्त अशरीरि, अविनाशी अतीन्द्रिय और निर्मल हैं उसी प्रकार ससारी जीव भी है। पूर्वोक्त सभी भाव पर स्वभाव है पर द्रव्य हैं इसलिये हेय हैं स्व-

---

(1) 1-2 सूक्ष्म ऐकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त 3-4 बादर ऐकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त 5-6 द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त 7-8 त्रीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त 9-10 चतुरिन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त 11-12 असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त 13-14 सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त।

द्रव्य आत्मा ही उपादेय है। अन्त मे पाच गाथाओ में विपरीत, अभिनिवेश (आग्रह) रहित श्रद्धान ही सम्यकज्ञान है सशय विमोह और विभ्रम रहित वह ज्ञान सम्यकज्ञान है। इसका विस्तार से कथन करके आचार्य श्री ने कहा है कि व्यवहार नय के चारित्र मे व्यवहार नय का तपश्चरण होता है तथा निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है।

चतुर्थ अधिकार व्यवहार चारित्र का है जिसमें आचार्य श्री ने अहिंसादि पाच व्रत, पाच समितियां तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एव कायगुप्ति का अत्यधिक सुन्दर एव सरलता से वर्णन किया है। अन्त में पच परमेष्ठियो के स्वरूप का लक्षण कहा गया है। घन घाती कर्म रहित केवल ज्ञानादि परमगुणो सहित चौतीस अतिशय युक्त अर्हन्त भगवान होते है।

सिद्ध –आठ कर्मो के बन्ध को जिन्होने नष्ट किया है, आठ महागुणों सहित है, लोक के अग्रभाग मे स्थित है ऐसे सिद्ध परमेष्ठी होते है।

आचार्य –ज्ञान दर्शन चारित्र तप और वीर्य पचाचारो से परिपूर्ण पाच इन्द्रियो को वश मे करने वाले धीर और गुण, गभीर आचार्य होते है। उपाध्याय –रत्नत्रय से युक्त, जिन कथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक, नि काक्ष भाव सहित उपाध्याय होते है।

सर्वसाधु –व्यापार से विमुक्त, चतुर्विध आराधना मे सदा रक्त, निर्ग्रन्थ, निर्मोही ऐसे साधु होते है।

पचम अधिकार –परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार नाम से है इसमें शुद्ध निश्चयात्मक परम चारित्र का प्रतिपादन किया गया है। यह आत्मा यह चिन्तन करे कि मे नारक पर्याय, तिर्यञ्चपर्याय, मुनुष्यपर्याय, देव पर्याय का कर्ता नही हूं न कारयिता हूं और न कर्ता का अनुमोदक हूं। इसी तरह मै मार्गणास्थान नही हूं, गुणस्थान अथवा जीवस्थान नही न उनका कर्ता हू, न कारयिता और न अनुमोदक हूं। मै न बाल, न वृद्ध और न जवान हू। उनका कारण नही हूं। कर्ता नही हू, कारयिता नही हूं, कर्ता का अनुमोदक नही हूं। इसी तरह न मैं राग हूं न द्वेष हू, तथा न मोह हूं, उनका कारण नही हूं, क्रोध नही हूं, मान नही हूं माया नही हूं लोभ नही हूं, उनका कर्ता नही हू, कारयिता नही हूं,

कर्ता का अनुमोदक न हूं इस प्रकार मध्यस्थ होने से जीव के निश्चय चारित्र होता है। जो आत्मध्यान द्वारा आत्मा को ध्याता है उसे प्रतिक्रमण होता है। जो जीव विराधन को, अनाचार को एव उन्मार्ग को शल्यभाव, अगुप्तिभाव, मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र को छोडकर आत्म ध्यान करता है, सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र को आता है उसके उत्तम चारित्र होता है आचार्यश्री ने अन्त मे कहा है कि ध्यान मे लन साधु सब दोषो का परित्याग करते है इसलिये ध्यान ही वास्तव में सब अतिचार का प्रतिक्रमण है।

षष्ठ अधिकार निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार है। निश्चय प्रत्याख्यान का अर्थ है अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थ पर हैं–ऐसा जो प्रत्याख्यान करता है–त्याग करता है वही ज्ञानी है। वह ज्ञानी केवल ज्ञान स्वभावी, केवल दर्शन स्वभावी, सुखमय और केवल शक्ति स्वभावी वह मैं हू ऐसा चितन करता है। जो निजभाव को नही छोडता है तथा किंचित भी परभाव को ग्रहण नही करता है। सर्व को जनता देखता है ऐसा वह स्वय है। वह अपने चिन्तन द्वारा आत्म स्वरूप वन जाता है। वह चिन्तन करता है कि उसके ज्ञान दर्शन चारित्र सभी में आत्मा है। मेरे प्रत्याख्यान, सवर तथा योग मे आत्मा है। वह ज्ञानी चितन करता है कि जीव अकेला मरता है अकेला जन्म लेता है। अकेला का मरण होता है और अकेला रज रहित होता हुआ सिद्ध होता है। सब जीवो के प्रति मुझे समता है। मुझे किसी के साथ बैर नही है मैं सब आशाओ को छोडकर समाधि को प्राप्त करता हू। इस प्रकार जो विविध चितन करता हैं जीव और कर्म के भेद का अभ्यास करता है वह नियम से प्रत्याख्यान धारण करने को शक्तिमान है।

सप्तम परम आलोचना अधिकार में भी आलोचना मे उत्तरोत्तर वृद्धि होती है तथा जो मुक्ति रमणी के हेतु आलोचना के भेदो को जानता हुआ भव्य जीव निज आत्मा में स्थिति प्राप्त करता है वह परम आलोचना मय बन जाता है। वह मद, मान, माया और लोभ रहित होकर वह भाव शुद्धि मय बन जाता है।

अष्टम अधिकार शुद्ध निश्चय प्रायशित अधिकार नाम से है। व्रत समिति शील और सयम रूप परिणाम तथा इन्द्रिय निग्रह भाव वह प्रायश्चित है अर्थात अन्तर्मुखाकार परम समाधि युक्त होना है। क्रोध

आदि स्वकीय भावो के क्षयादिक की भावना मे रहना निश्चय से प्राय-श्चित है। वह क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव से, माया को आजव से तथा लोभ को सतोष से जीतते हैं। आगे आचार्य श्री ने कहा है कि अनेक कर्मो के क्षय हेतु जो महर्षियो का तपश्चरण है वह सब निश्चय प्रायश्चित है। कायादि पर द्रव्य मे स्थिर भाव छोड़कर जो आत्मा को निर्विकल्प रूप से ध्याता है वही कायोत्सर्ग ह।

नवम अधिकार परम समाधि अधिकार है जो गाथा संख्या 122 से प्रारम्भ होकर 140 गाथा तक समाप्त होता है। तपश्चरण की क्रिया में बराबर वृद्धि हो रही है। वचनोच्चारण की क्रिया का परित्याग कर वीत-राग भाव से जो आत्मा को ध्याता है उसे परम समाधि है। परम समाधि को समझाते हुये आचार्य कहते हैं कि सयम, नियम और तप से तथा धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान से जो आत्मा को ध्याता है उसे परम समाधि है। जो सर्व सावद्य में विरत है जो तीन गुप्ति वाला है जिसने इन्द्रियो को बन्द किया है उसे सामयिक है ऐसा केवल भगवान ने कहा है। इसी की आगे की गाथाओं में इन्ही भावों को और समझाया गया है। जिसे राग या द्वेष विकृति उत्पन्न नही करता वह सामयिक स्थायी है

जस्स रगो दु दोसो दु विगडि ण जणेइ दु।
तस्स सामाइग ठाई इदि केवलि सासणे ।128।

जो आर्त्त ओर रौद्र ध्यान को नित्य वर्जता है, जो पुण्य तथा पाप रूप भाव को नित्य वर्जता है तथा धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान को नित्य ध्याता है उसे सामयिक स्थाई है।

दशम अधिकार परम भक्ति अधिकार हैं। इसमे कहा गया है कि जो श्रावक अथवा श्रमण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र की भक्ति करता है उसे निर्वृत्ति भक्ति है। जो साधु सर्व विकल्पों के अभाव मे आत्मा को लगाता है वह योग भक्ति वाला है। जो यह आत्मा आत्मा को आत्मा के साथ निरन्तर जोड़ता है वह मुनीश्वर निश्चय से योग भक्ति वाला है।

ग्यारहवाँ अधिकार निश्चय–परमावश्यक अधिकार है। 141 वी गाथा में कहा गया है कि जो जीव अन्य के वश नही है उसे आवश्यक कर्म

कहते है कर्म का विनाश करने वाला योग वह निर्वाण का मार्ग है। आगे कहा है कि जो वश नही है वह अवश है और अवश का कर्म वह आवश्यक है ऐसा जानना चाहिये। वह अशरीरी होने की युक्ति है वह अशरीर होने का उपाय है। उससे जीव निरवयव होता है ऐसी निरुक्ति है। जो जीव अन्य वश है वह चाहे मुनिवेषधारी हो तथापि ससारी है दुख भोगने वाला है किन्तु जो जीव स्ववश है वह जीवनमुक्त है जिनेश्वर से किंचित न्यून है। जो परभाव का परित्याग कर निर्मल स्वभाव वाले आत्मा को ध्याता है वह वास्तव मे आत्मवश है उसे आवश्यक कर्म जिन कहते है। आवश्यक सहित श्रमण अन्तरात्मा है तथा आवश्यक रहित श्रमण बहिरात्मा है। सर्व पुराण पुरुष उस प्रकार आवश्यक करके अप्रमत्तादि स्थान को प्राप्त करके केवली हुए।

शुद्धोपयोग अधिकार अतिम अधिकार है। यह अधिकार 159 वी गाथा मे प्रारम्भ होकर 187 वी गाथा तक चलता है। केवली भगवान व्यवहार नय से सबको जानते है देखते है निश्चय नय से केवल ज्ञानी आत्मा को जानता है। जैसे सूर्य के प्रकाश और ताप युगपत वर्तते है वैसे केवल ज्ञानी को ज्ञान तथा दर्शन युगपत बर्तते है इससे आगे व्यवहार नय और निश्चयनय से आत्मा पर प्रकाशक एव स्वप्रकाशक का कथन किया गया है। अन्त मे आचार्य श्री ने कहा है कि नियमसार में नियम और नियम का फल प्रवचन की भक्ति से दर्शाये गये हैं यदि उसमें पूर्वापर विरोध हो तो समयज्ञ (आगम के ज्ञाता) उसे दूर करके पूर्ति कर लेना चाहिये। किन्तु ईर्ष्या भाव से इस सुन्दरमार्ग की जो निन्दा करते है तो उनके वचन सुनकर भी जिन मार्ग के प्रति अभक्ति नही करनी चाहिये। इसी कथन के साथ नियमसार की समाप्ति होती है।

नियमसार पर सस्कृत टीकायें –

नियमसार पर आचाय पद्मप्रभमलधारिदेव की एक मात्र सस्कृत टीका उपलब्ध हैं। ये मूलसघ कुन्दकुन्दान्वय पुस्तकगच्छ और देशी गण के आचार्य वीरनन्दि के शिष्य थे। नियमसार पर लिखित सस्कृत टीका का नाम तात्पर्यवृत्ति है। इनकी यह तात्पर्यवृत्ति अमृतचन्द्र की टीका समयसार तात्पर्यवृत्ति की शैली मे लिखी गई है जिसमे गद्य पद्य दोनो हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव की तात्पर्यवृत्ति बहुत ही उत्तम है जिसमें गाथा का अर्थ एक दम स्पष्ट हो जाता है। टीका मे टीकाकार ने अनेक आचार्यों के ग्रंथों में से उद्धरण दिये है। ऐसे आचार्यो मे समन्तभद्र, सिद्धसेन,

पूज्यपाद, अमृतचन्द्र, सोमदेव, गुणभद्र, बादिराज योगीन्द्रदेव चन्द्रकीर्ति महासेन के नाम उल्लेखनीय है।

वृत्तिकार ने अपने समय में विद्यमान माधवसेनाचार्य को भी नमस्कार किया है। ये कौन से माधवसेन थे इस सबध में कुछ ज्ञात नही हो सका है।सवत 1107 का[1] एक शिलालेख मद्रास प्रान्त के पाटशिवपुरम नामक ग्राम के दक्षिण द्वार पर मिला है जिसमें पद्मप्रभमलधारिदेव एव उनके गुरु श्री वीरनन्दि सिद्धान्त चक्रवर्ती का उल्लेख है। इससे इनका समय 12 वी शताब्दी का निश्चित होता है।

तात्पर्यवृत्ति मे गद्य टीका के अतिरिक्त 311 पद्यात्मक टीका है। नियमसार की यह टीका अत्यधिक प्रसिद्ध टीका है। नियमसार की अधिकाश पाण्डुलिपिया पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका सहित मिलती हैं। नियमसार की प्राचीन हिन्दी टीका हमारे देखने में नही आयी। इसका गुजराती अनुवाद श्री हिम्मतलाल जेठालाल शाह ने तथा हिन्दी अनुवाद श्री मगनलाल जैन का मिलता है। नियमसार का नवीन सस्करण सुसम्पादित होकर प्रकाशन की आवश्यकता है।

अष्ट पाहुड

अष्ट पाहुड आचार्य कुन्दकुन्द का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। जिस प्रकार इसके आठ पाहुडो में जीवन सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला गया है वह विवेचन अपने आपमें अनूठा है। अष्ट पाहुड आठ पाहुडो के संग्रह का नाम ह। ये है दर्शन पाहुड सूत्र पाहुड, चारित्र पाहुड, बोध पाहुड, भाव पाहुड, मोक्ष पाहुड, लिंग पाहुड, और शील पाहुड। ये सभी स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में है। किसी एक ग्रंथ के अधिकार अथवा सर्ग नही है। सभी पाहुड नामान्तक है इसलिये इनको एक ग्रंथ का नाम दे दिया गया है। यहा एक एक पाहुड का सक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है :—

दर्शन पाहुड:—

इस पाहुड में 36 गाथायें है। प्रारम्भ मे ऋषभनाथ एव वर्द्धमान को नमस्कार करके दर्शन मार्ग को वर्णन करने की बात कही गई है। आचार्यश्री ने कहा है कि धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है तथा जो सम्यग्दर्शन

1.-तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा पृष्ठ–147

से हीन हैं वे वन्दा करने योग्य नही है। आगे चलकर उन्होने कहा है कि जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है वे तो भ्रष्ट ही है उनको मुक्ति प्राप्त नही होती। जो चारित्र से भ्रष्ट है उनको तो मोक्ष पद प्राप्त हो सकता है। उन्होने फिर कहा है कि बहुश्रुतज्ञ अथवा शास्त्रो के ज्ञाता होने पर भी जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है उन्हें भी कभी मुक्ति नही मिलती। सम्यकत्व के बिना करोडो वर्षो तक तप करने पर भी यदि सम्यग्दर्शन से रहित है तो उनको कैवल्य नही हो सकता। जो व्यक्ति सम्यकत्व ज्ञान दर्शन बल वीर्य आदि गुणो से वृद्धि को प्राप्त तथा कलियुग के मलिन पाप से रहित है वे थोडे ही समय मे उत्कृष्ट ज्ञानी बन जाते है। सम्यकत्व रुपी जल प्रवाह मे जिसका हृदय बहता रहता है उसके अनादि काल से बधा हुआ भी कर्म रुपी ध्वनि का आवरण नष्ट हो जाता है। आगे की गाथाओ में इसी तरह सम्यकदर्शन की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है। आचार्य श्री ने तो यहा तक कहा है कि यदि दर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति सम्यक् दृष्टि से अपने आपको पुजाता है पैरो में भी गिरता है तो वह अगले भव में लूला लगडा बनता तथा जो सम्यग्दृष्टि है और मिथ्यादृष्टियो के जानते पूछते भी चरणो मे गिरता है तथा वह भी पाप की अनुमोदना करने के कारण ग्यारहवीं प्रतिमाधरी सम्यकत्व खो बैठता है।

जैनधर्म में मुनि, श्रावक एवं आर्यिका ये तीन ही पद उत्कृष्ट माने गये है। इसके आगे आचार्य ने कहा है कि असयमी की कभी वन्दना नही करनी चाहिये किन्तु जो वस्त्र रहित होने पर भी भाव सयमी नही है वह भी वन्दनीय नही है। सम्यकत्व शुद्ध भाव से युक्त मुनि का तप, शील, गुण, सयम सभी वन्दनीय हैं। मनुष्य के लिये ज्ञान सार है क्योकि ज्ञान से ही हेयोपादेय को जानता है। ज्ञान से भी अधिक सम्यग्दर्शन सार है। सम्यकत्व से ज्ञान सम्यग्दर्शन और चारित्र सम्यक चारित्र होता है और चारित्र से मुक्ति प्राप्त होती है। सम्यकत्व सहित ज्ञान दर्शन' तप एव चारित्र इन चारो से ही निर्वाण प्राप्त होता है।

सूत्र पाहुड

सूत्र पाहुड मे 27 गाथाये हैं। सर्वप्रथम कहा गया है कि जो अर्हन्तो द्वारा भाषित है, गणधरो द्वारा गुथा गया है तथा निर्ग्रन्थ आचार्यो द्वारा जिन सूत्र के अनुसार स्वय अपने जीवन को साधा है तथा फिर उनके अनुसार चलने की प्रेरणा दी है उसी मार्ग पर चलने वाला भव्य जीव

मोक्ष पाने योग्य हैं। सूत्रो का ज्ञाता संसार का नाश करता है। सूत्रो से जीवाजीवादि तत्वो का अर्थ तथा हेय एव उपादेय का ज्ञान होता है क्योकि जिन भाषित सूत्र व्यवहार रूप हैं तथा परमार्थ रूप है तथा उन पर चलने वाला सम्यग्दृष्टि होता है। जो मनुष्य सूत्र अर्थ से भ्रष्ट है वे चाहे हरिहरादि ही क्यो न हो वे मोक्ष प्राप्त नही कर सकते। इसी प्रसगमें आगे कहा गया है कि जिन मुद्राधारी मुनि, सम्यकत्व सहित गृहस्थ/श्रावक तथा आर्यिका तीनो ही मोक्षमार्गी है तथा पूज्य है। स्त्रियो को मोक्ष नही हो सकता इसके लिये आचार्य श्री ने कई तर्क दिये है। तथा मुनिचर्या पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इस पाहुड का नाम यद्यपि सूत्र पाहुड है लेकिन इसमे अधिकाश गाथायें मुनिचर्या पर प्रकाश डालती हैं।

चारित्र पाहुड

चारित्र पाहुड मे 45 गाथाये है। त्रिलोक वदनीय सर्वदर्शी सर्वज्ञो वीतरागी परमेष्ठियो की वन्दना करने के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द कहते है कि सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र ये तीनो आत्मा के परिणाम है तथा शुद्धता का कारण है। ज्ञान और दर्शन के समायोग से चारित्र होता है। चारित्र दो प्रकार का है एक सम्यकत्वाचरण चारित्र एव दूसरा सयमाचरण चारित्र। सम्यकत्वाचरण चारित्र शकादि दोषो से रहित तथा निशकितादि आठ अगो सहित तत्त्वार्थ की श्रद्धा करना सम्यकत्वाचरण है। सम्यकत्वाचरण से युक्त जो सयमाचरण को स्वीकार करते है वे शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं। लेकिन जो सम्यकत्वाचरण से शून्य सयमाचरण की ही आराधना करते है वे निर्वाण को प्राप्त नही हो सकते। सम्यकत्व के विनय, वात्सल्य, अनुकम्पा, मार्गप्रभावना, उपगहन, स्थितिकरण आदि आठ अग बतलाये गये है। यह आत्मा सम्यग्दर्शन से सत्तामात्र वस्तु को देखता है। सम्यग्ज्ञान से द्रव्य और पर्यायो को जानना है तथा सम्यकत्वाचरण से द्रव्य पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तु का श्रद्धान करता है। सम्यग्दृष्टि जीव के सख्यात कर्मो की निजरा होती है और सम्यग्दर्शन सहित चारित्र का पालन करने वाले के असख्यात गुणी कर्मो की निर्जरा होती हैं। सयमाचरण चारित्र सागार एव अनगार भेद से दो प्रकार का है सागार के (श्रावक) ग्यारह प्रतिमाये होती है। पाच अणुव्रत तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रत ये श्रावक के 12 व्रत होते है। पाच इन्द्रिय का रोध, पाच महाव्रतो का पालन, पच्चीस क्रिया, पांच समिति तथा तीन गुप्तियो का पालन निरागार सयमाचरण है। इन सबके विस्तृत कथन के साथ इस चारित्र पाहुड की समाप्ति होती है।

बोध पाहुड

बोध पाहुड में आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा दर्शन, जिनबिंब, जिनमुद्रा, जिनज्ञान, देव, तीर्थ, अरहत एव विशुद्ध प्रव्रज्या से युक्त साधु ये ग्यारह स्थल बाधे है । इन ग्यारह के माध्यम से दिगम्बर धर्म और निर्ग्रन्थ साधु के स्वरूप का कथन किया गया है । जिनमार्ग मे प्रवृत सयम सहित मुनिरुप ही आयतन है। जो मुनि अपनी ज्ञानमयी आत्मा को जानता हुआ दूसरो के चेतनामयी स्वरूप को जानता है तथा पाच महाव्रतो से शुद्ध होकर मुनि है वही चैत्यगृह है दर्शन ज्ञान से शुद्ध निर्मल चारित्र वाले चलते फिरते निर्ग्रन्थ वीतराग मुद्रास्वरूप जिन प्रतिमा है तथा व्यवहार से धातु पापाण आदिकारी दिगम्बर मद्रा स्वरूप प्रतिमा जिन प्रतिमा है जो माक्षमार्ग को दिखाने वाली है प्रतिरूप है वही दर्शन है। दर्शन ज्ञानमयी चेतना भाव सहित जिनबिंव आचार्य है । यही दीक्षा शिक्षा देने वाली अरहत को मुद्रा है। ऐसा जिनबिंब आचार्य है ।

सयम सहित होकर इन्द्रियो को वशीभूत करके कषायो में जिनकी प्रवृत्ति नही होती ऐसी मुनि मुद्रा ही जिनमुद्रा है। जिनागम अनुसार सत्यार्थ ज्ञान मे विनय के साथ ज्ञान का साधन करना ज्ञान है । जो अर्थ धर्म, काम और ज्ञान को देता है वह देव ह ।

धर्म वह हैं जो दया से विशुद्ध है तथा प्रवज्या सर्व परिग्रह रहित है तथा भव्य मोह ममता से रहित है वह देव है। व्रत सम्यक्त्व से विशुद्ध पाच इन्द्रिय निरोध, ख्याति लाभ इह लोक एव परलोक के भोगो की आशा से रहित जो आत्मा है वही तीर्थ है उसमें दीक्षा व स्नान कर पवित्र होवें। इसके आगे अरहन्त, एव विशुद्ध प्रवृज्या का वर्णन किया गया है।

अन्त में आचार्य कुन्दकुन्द ने अपनी लघुता प्रकट करते हुये कहा कि सूत्रो में जो कुछ जिनेन्द्र भगवान ने कहा है वैसा ही भद्रबाहु के शिष्य ने कहा वैसा ही मैंने कहा है ।

भाव पाहुड

भाव पाहुड अष्ट पाहुड में सबसे बडा पाहुड है। इसमे 165 गाथायें है। सर्वप्रथम तीर्थंकर परमदेव तथा सिद्ध भगवान की वदना

करते हुये आचार्य कुन्दकुन्द भाव पाहुड कहने की प्रतिज्ञा करते है। भाव-लिंग और द्रव्यलिंग ये दो प्रकार का है। भावो की शुद्धि के लिए बाह्य परिग्रह का त्याग किया जाता है लेकिन अ तरग भाव बिना बाह्य त्याग निष्फल हे। भाव रहित लाखो करोडो वर्षो तक वस्त्र त्यागकर तपश्चरण करना व्यर्थ है। परिणाम अशुद्ध होने पर वस्त्र त्याग कर मुनि बनना बाह्य परिग्रह का त्याग मात्र है। भाव लिंग को परमार्थ जानकर उसे अगीकार करना चाहिये। जो द्रव्य लिंग के धारी है उनसे कुछ सिद्धि प्राप्त नही होती है। सत्पुरुष तूने अनादिकाल से इस अनत ससार विषै भ्रमण कर भाव रहित निर्ग्रन्थ रूप धारण किया लेकिन कुछ भी सिद्धि नही मिली तथा चतुर्गति मे भ्रमण कर रहा है। हे जोव तूने नकरगति मे भीषण दुख सहे। कभी तिर्यन्च गति और कभी मनुष्य गति मैं तीव्र दुख पाये लेकिन शुद्ध आत्मतत्व की भावना बिना तेरा ससार का भ्रमण नही मिटा। हे जीव तूने तिर्यञ्च गति मे खनन उत्तापन ज्वलन, वेदन, व्युच्छेदन निरोधन इत्यादि दुख असख्यात काल पर्यन्त वज्रपातादि का दुख सहा। अनेक मानसिक दुख सहे। इस प्रकार आचार्य श्री ने देव गति मैं अनेक बार कुदेव गति को प्राप्त की तथा वहा से आकर माता के गर्भ की पीडा सही। हे जीव तू जलकायिक, पृथ्वीकायिक, अग्निकायिक, वायु-कायिक, शरीर धारण कर तथा पर्वत, नदी, गुफा आदि मे बहुत काल पर्यन्त अनेक दु व उठाये। हे जीव तूने प्यास बुझाने के लिए तीनो लोको का जल पिया लेकिन फिर भी तेरी प्यास नही बुझी। हे जीव तूने द्रव्य लिगी मुनि वनने पर भी इस विश्व मैं ऐसा कोई स्थान नही जहा तूने जन्म मरण नही किया हो।

इसके आगे आचार्य कुन्दकुन्द ने बाहुबलि, मधुपिंगल, वसिष्ठ मुनि आदि का उदाहरण देकर भाव विशुद्धि बिना जिन्होने जन्म मरण के दु ख सहे उनको गिनाया है। शिवभूत्ति मुनि का भी उदाहरण दिया है जिसने भाव विशुद्धि से कैवल्य प्राप्त किया। आत्मा की भावना बिना केवल नग्नपना कुछ कार्य करने वाला नही है। चिदानन्द स्वरूप आत्मा का ही निरन्तर ध्यान करने से ही नग्नत्व सफल हो सकता है। भावलिगो मुनि

यही चिन्तन करता है कि पर द्रव्य मेरे नही है केवल आत्मा ही मेरा है। जीव के स्वरूप कथन के पश्चात भाव रहित नग्नत्व पर फिर करारी चोट की है। निर्ग्रन्थ मनि बनने के पूर्व मिथ्यात्व आदि दोषो को तोड देना चाहिए फिर द्रव्य लिंगी मुनि बनना चाहिए।

भाव तीन प्रकार के है शुभ अशुभ और शुद्ध। आर्त्त एव रौद्र ध्यान अशुभ भाव है तथा धर्म ध्यान शुभ भाव है। मुनि सोलह कारण भावना कर तीर्थ कर प्रकृति का बध करता है। भाव विशुद्धि के लिये बारह प्रकार का तप, तेरह प्रकार की क्रिया मन वचन काय से पालन करनी चाहिए। आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि जिस प्रकार रत्नो में सबसे बडा रत्न हीरा होता है उसी प्रकार धर्मो में सबसे बडा धर्म जिन-धर्म है। व्रत सहित पूजा आदि मे जो शुभ भाव होते हैं इनसे जो सौख्य दायक कर्म बधता है वही पूज्य है तथा मोह क्षोभ रहित आत्मा के परिणाम होना ही धर्म है। जो जीव पुण्य को ही धर्म जानकर श्रद्धान करता है वह भोग का कारण बनता है उससे कर्मो का क्षय नही होता। रागादि समस्त दोषो से रहित होना ही ससार से मुक्ति का कारण बनता है। आत्मा का यथार्थ ज्ञान, उसमें श्रद्धा एव प्रतीति करना मन वचनकाय से आचरण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आचार्य कुन्दकुन्द ने भाव शुद्धि के लिये भी अनेक उपाय बतलाते हैं जिनमें बारह भावनाओ का चिन्तन, महाव्रतो को धारण करना, नवप्रकार से ब्रह्मचर्य पालन करना, परिषहो को सहन करना, उपसर्ग को सहना आदि सभी भाव विशुद्धि के कारण है।

कन्दमूलादिक सचित अनतजीवनी की काय है तथा अन्य बीजादिक सचित है उनको इस जीव ने भक्षण किया हं जिस कारण भी यह जीवन अनन्त योनियो में भ्रमण किया है। विनय के बिना मुक्ति नही मिलती इसलिए मुनियो को भी पच प्रकार विनय करना आवश्यक है। अपनी शक्ति रूप वैयावृत्य करना, गुरु को अपने दोषो को कहना भी भाव शुद्धि

का कारण है। आगे क्षमा धारण करना आवश्यक बतलाया गया है। आभ्यतर लिग की शुद्धता को प्राप्त मुनि के लिये भी केश लोच करना, वस्त्र त्याग, मयूर पिच्छ रखना, शरीर का स्नानादिक से सस्कार न करना ये चार प्रकार के बाह्य लिग भी आवश्यक है।

आचार्य कुन्दकुन्द करते है कि—हे मुनि तू भाव विशुद्धि प्राप्त कर तू सभी उत्तर गुणो को भी पालन कर जीवादि सात तत्वो पर चिन्तन कर क्योकि पाप पुण्य का तथा बध मोक्ष का कारण परिणाम ही तो है। मिथ्यात्व, कषाय अरु असयम अशुभ कर्म का बध कराते हैं इनसे उलटा जीव पुण्य कर्म को बाधता हैं। हे मुनि तू आत्त एवं रोद्र ध्यान को छोड कर एव शुक्ल ध्यान को धारण कर तभी ससार रूपी वृक्ष को काटा जा सकता हैं। भाव श्रमण ही सुख पाते है। भाव श्रमण ही तीर्थं-कर गणधर आदि के पद को पाते है। इसके आगे अहिसा धर्म का वर्णन किया गया है तथा कहा है कि अभव्य जीवो को जिन प्रणीत धर्म की रूचि नही होती इसलिये वे दु ख पाते है। मिथ्यात्व सबसे बडा दुर्गति का कारण है। सम्यग्दर्शन के बिना पुरूष मृतक तुल्य है इसलिये सम्यकत्व रत्न गुण रूप जो रत्न है वही मोक्ष मदिर का प्रथम सोपान है।

आचार्य श्री ने आगे कहा है कि जीव कर्त्ता है भोक्ता है अमूर्त्तिक है शरीर प्रमाण है, अनादि निधन है दर्शन ज्ञान उपयोग मय है। सम्यक् प्रकार जिन भावना करि युक्त भव्य जीव ज्ञानावरणादिक चारो घातिया कर्म का सम्पूर्ण अभाव करते है तथा अनन्त चतुष्टय प्रकट हो जाते है वही परमात्म स्वरूप कहलाता है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते है कि ऐसी अरहन्त जिनेश्वर उनकी रक्षा करें। इससे आगे आचार्य श्री ने सम्यग्दर्शन की महिमा, सम्यग्दृष्टि एव उसके पालन करने वालो की प्रशसा की है। इसके साथ ही 163 गाथाओ का यह भाव पाहुड़ समाप्त होता है।

मोक्ष पाहुड —

मोक्ष पाहुड में मंगलाचरण के पश्चात् आत्मा तीन प्रकार की कही गइ है अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा। स्पर्शनादि इन्द्रियो द्वारा बाह्यात्मा को जाना जाता है मन के द्वारा अन्तरात्मा को जाना जाता है तथा परमात्मा का ध्यान कर कर्म मल से रहित होकर अनतज्ञानदिक गुण सहित जानना परमात्मा है। वह परमात्मा द्रव्य कर्म, भाव कर्म रूप

काल रहित है। शरीर रहित है अतिन्द्रिय है, केवल ज्ञान मयी है परमेष्टी है परमपद में स्थित है शाश्वत है अविनाशी है, निर्वाण पद को प्राप्त है। वहिरात्मा को मन वचन काय से छोड कर अन्तरात्मा का आश्रय होकर परमात्मा का ध्याना करना चाहिये। जो वहिरात्मा के भाव को छोड अन्तरात्मा होकर परमात्मा में लीन होता है उसे मोक्ष मिलता है। पर द्रव्य से रागभाव बध का कारण है और विराग भाव मोक्ष का कारण है। जो मुनि अपनी आत्मा में रत है रूचि सहित है वह नियम से सम्यकदृष्टि है तथा जो पर द्रव्य मे रत है वह मिथ्यादृष्टि होकर कर्म बध करना है। आत्म स्वभाव के अतिरिक्त स्त्री पुत्रादिक एवं धन धान्य हिरण्य सुर्वणादिक आभूपण सहित गृहादिक सभी पर द्रव्य है। ज्ञानानन्द मय अमूर्तिक ज्ञान अपनो आत्मा है वही एक स्व द्रव्य है अन्य सब चेतन अचेतन मिश्र पर द्रव्य है। ऐसे पर द्रव्य को त्याग कर जो स्व स्वरूप को ध्याते है वे निश्चय चारित्र होकर मोक्ष प्राप्त करते है।

ध्यान से स्वर्ग एव मोक्ष मिलता है। आगे फिर ध्यान का वर्णन किया है। कहा है जो शुद्धात्मा है वही केवल ज्ञान है और केवल ज्ञान ही शुद्धात्मा है। तत्व की रूचि ही सम्यक्त्व है तत्व का ग्रहण सम्यग्ज्ञान है, फिर सम्यक दर्शन की प्रधानता को स्वीकार किया गया है कि जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है सो ही शुद्ध है वही निर्वाण प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शन से विहिन पुरूष मोक्ष को प्राप्त नही करते है। जैन धर्म के अनुसार जीवा-जीवादि पदार्थो का ज्ञान सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित पाप पुण्य का परिहार करना सम्यक चारित्र है जो मुनि रत्नत्रय से युक्त होकर अपनी शक्ति के अनुसार तप करता है वही निर्वाण पद प्राप्त करता है। इसके आगे मोक्ष प्राप्ति के विभिन्न कारणो पर प्रकाश डाला गया ह। तपश्चरैण में महत्ता व्यक्त करते हुए लिखा है कि परिषह सहन करने मे आत्मा को जाना जा सकता है। इस पचम काल मे भी मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र से शुद्ध होकर आत्मा का ध्यान से स्वर्गादि के इन्द्रत्व प्राप्त करते है और फिर वहाँ से जन्म लेकर निवार्ण पाते है।

श्रावक भी सम्यक्त्व धारण कर सकते है वे भी ध्यान कर सकते है। हिंसा रहित धर्म का पालन, अठारह दोप रहित देव की उपासना,

निग्रन्थ प्रवचन श्रवण ये सब मोक्ष मार्ग है इनमें श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। जो जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म का पालन करते है ये सम्यग्दृष्टि है। आचार्य कहते है कि अरहतादि पच परमेष्ठी भी आत्मा में ही है इसलिये आत्मा ही कारण है।

अन्त में आचार्य कुन्दकुन्द ने कहते है कि जो जीव भगवान जिनेन्द्र द्वारा कथित मोक्ष पाहुड को भक्ति भाव से पढता है बार-बार चितवन करता है श्रवण करता है वह शाश्वत सुख अतीन्द्रिय ज्ञानानन्द मय सुख को प्राप्त करता है।

लिग पाहुड :—

यह पाहुड बहुत छोटा पाहुड है। इसमें मगलाचरण के पश्चात आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि केवल लिग मात्र से ही धर्म की प्राप्ति नही होती इसलिये भाव धर्म का पालन आवश्यक है। जो नग्न दिगम्बर भेष धारण कर जो अपनी विपरीत क्रियाओ से हसी कराते हैं वे तो पाप वृद्धि वाले है। जो मुनि बनने के पश्चात भी नृत्य करते है गाते है बजाते है वे तो पाप मोहित हैं पशु के समान है श्रमण नही है। इसी तरह निर्ग्रन्थ बनने के पश्चात भी परिग्रह का सचय करते है उसके मोह मे फस जाते है उसकी रक्षा की निरन्तर चिन्ता करते है, अब्रह्म का सेवन करते है मान करते है निरन्तर कलह करते है, द्यूत क्रीडा खेलते है, विपाद करते है इसके अतिरिक्त जो मुनि आहार में आसक्ति रखते है। काम वासना की इच्छा करते है प्रमाद एव निद्रा मे रहते है। आहार के निमित्त दौडते है उसके कारण दूसरो से ईर्ष्या से करते है।

उक्त विपरीत कार्यो के अतिरिक्त स्त्रियो के प्रति निरन्तर राग भाव करते है, अपने दीक्षा पूर्व के ग्रहस्थी जनो से बहुत स्नेह रखते है वे सब द्रव्य लिंगी मुनि है। श्रमण नही है। इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द ने मुनि धर्म के धारण करने वाले मुनियो को सावधान किया है तथा द्रव्य लिंगी मुनि नही बन कर भाव लिगी मुनि बनने की प्रेरणा दी है।

शील पाहुड :—

यह अष्ट पाहुड का अ तिम पाहुड है। इस पाहुड 40 गाथाये है।

जिनमे कहा गया है कि शील एव ज्ञान के कोई विरोध नही है किन्तु शील का अभाव ज्ञान को भी नष्ट कर देता है ज्ञान की प्राप्ति, ज्ञान भावना करना फिर विषयो से विरक्ति यह सभी उत्तरोत्तर दुर्लभ है। यह जीव विपयो के वशीभूत होने पर ज्ञान को प्राप्त नही करता क्योकि विषयो को विरक्ति ज्ञान से होती है। ज्ञान यदि चारित्र हीन हो तो भी वह निरर्थक है तथा निर्ग्रन्थपना यदि सम्यग्दर्शन से रहित है तो भी निरथक है तथा सयम हीन हो तब भो निरथक है। इसलिये परिज्ञान चारित्र से शुद्ध है, निर्ग्रन्थपना सम्यग्दर्शन से शुद्ध है। तथा तप सयम पूर्वक है तभी महाफल होता है। जो ज्ञान को प्राप्त कर विपयासिक्त रहता है तो सब वृथा है। ज्ञान को प्राप्त कर भी विपयासिक्त होने पर ज्ञान का दोष नही वह भी कुपुरूष का दोष है। ज्ञान दर्शन तप इनका जो सम्यक्त्व सहित आचरण करता है उसको निर्वाण की प्राप्ति होती है। जो पुरूष सम्यग्दर्शन से शुद्ध दृढ चारित्र का पालन करता है तथा अपने शील की रक्षा करता है वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

शील का महत्व बताते हुये आचार्य श्री कहते है कि जीव-दया, इन्द्रिय दमन, सत्य, अचौर्य्य, ब्रह्मचर्य, सतोष, सम्यग्दर्शन ज्ञान और तप ये सब शील के ही परिवार सदस्य है। आचार्य कहते है कि विष खाने में भी जीव एक बार ही मरता है लेकिन विषय सेवन रूपी विष से तो वह बार-बार मरता है और जन्म लेता है। यदि किसी मनुष्य के सभी अ ग उत्तम एव सुन्दर है किन्तु एक शील अ ग नही है तो उसके सभी अ ग व्यर्थ है। इस प्रकार आगे के सभी गाथाओ मैं शील पालन की महत्ता का वर्णन किया है।

सस्कृत टीका —

अष्ट पाहुड के अ तिम दो पाहुड लिंग पाहुड एवं शील पाहुड को छोडकर शेष 6 प्राभृतो पर श्रुतसागर मुनि की एक मात्र सस्कृत टीका मिलती है। श्रुतसागर भट्टारकीय परम्परा के विद्वान थे। उनकी भट्टारक परम्परा निम्न प्रकार मानी जाती है:—

भ० पदमनन्दि

देवेन्द्रकीर्ति

विद्यानन्दि [स० 1499-1536]
मल्लिभूषण-श्रुतसागर [1544-1555]
लक्ष्मीचन्द्र [1556-82]

श्रुतसागर मल्लिभूषण के गुरू भाई थे। ये बड भारी विद्वान थे। इन्होने अपने आपको कलिकाल सर्वज्ञ, कलिकाल गौतम, उभय भाषा कवि चक्रवर्ती, व्याकरण कमलमार्तण्ड, तार्किक शिरोमणि, परमागम प्रवीण, नवनवति महावादी विजेता आदि विशेषणों से अलकृत किया है। अब तक उनके प्रशस्ति चन्द्रिका, तत्वार्थ वृत्ति, तत्वश्रय प्रकाशिका, जिनसहस्त्र-नाम टीका, औदार्य चिन्तामणि, महाभिषेक टीका, व्रतकथा कोष, श्रुत-स्कन्ध पूजा, वेदप्राभृत टीका, सिद्ध भक्ति टीका, यशोधर चारित्र, पार्श्वनाथ स्तवन, सिद्धचक्राष्टक टीका, श्रीपाल चरित्र, श्रुतस्कध पूजा, ज्ञानरणव गद्य टीका, षोडशकरण पूजा सरस्वती स्तोत्र, सिद्धचन्द्र पूजा आदि ग्र थ उपलब्ध होते है। व्रतकथा कोश में 24 कथाए है यदि यदि इन सबको जोडा जावे तो इनके ग्र थो की सख्या 42 हो जाती है। इनके अतिरिक्त और भी ग्र थ मिल सकते है।

षट पाहुड टीका में इन्होने मूल ग्रन्थकर्ता की गाथाओ की टीका लिखने के अतिरिक्त स्वय के विचार भो टीका में लिख दिये है। ये कट्टर दिगम्बर परम्परा के साधु थे। ये अपने नाम के आगे सूरि शब्द लगाते थे जो इनकी अद्वितीय विद्वता की ओर सकेत मात्र है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो में षट् पाहुड टीका की पर्याप्त सख्या में पाण्डुलिपिया मिलती है।

हिन्दी टीका —

जयपुर (राजस्थान) के विद्वान प० जयचद छाबडा एक मात्र व्यक्ति है जिन्होने अष्ट पाहुड पर सवत 1867 भाद्रपद शुक्ला 13 को ढू ढाडी गद्य (राजस्थानी) में बचनिका लिख कर समाप्त की थी। प० जयचन्द जी अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान थे तथा महापडित टोडरमल के पाश्चात् उन्ही को दूसरा सम्माननीय स्थान प्राप्त था। बचनिका कार ने स्वय अष्ट पाहुड टीका की प्रशस्ति लिखी है जिसको अविकल रूप से यहा दिया जा रहा है।

ऐसे श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबध पाहुड ग्र थ है तिनिमें ये पाहुड हैं तिनिकी यह देश भाषामय वचनिका लिखी है। तहा छह पाहुड की तो टीका टिप्पण हैं तिनि मे टीका तो श्रुतसागरकृत है अर टिप्पण पहले काहू औरनें किया है तिनिमें केई गाथा तथा अर्थ अन्य प्रकार है तहा मेरे विचार मे आया तिनिका आश्रयमी लिया है अर जैसे अर्थ मोकू मति-भास्या वैसे लिख्या है। अर शील पाहुड इनि दोऊ पाहुड निकी टीका टिप्पण मिल्या नाही तातें गाथा का अर्थ जैसे प्रतिभाव में आया तैसे लिख्या हैं। अर श्रुतसागरकृत टीका षट् पाहुड की है तामैं ग्र थातर की साखि आदि कथन बहुत है सो तिस टीका की यह बचनिका नाही है, गाथा का अथ मात्र बचनिका करि भावार्थ मे मेरी प्रतिभास में आया तिस अनु-सार लेय अर्थ लिख्या है। अर प्राकृत व्याकरण आदि का ज्ञान मोपै विशेष है नाही तातें कहू व्याकरणतै तथा आगमते शब्द अर अर्थ अपभ्र श भया होय तहा बुद्धिमान पडित मूलग्र थ विचारि शुभ करि बाचियो, मोकू अल्पबुद्धि जानि हास्य मति करियो, क्षमा करियो, सत्पुरूषनिका स्वभाव उत्तम होय है, दोष देखि क्षमा ही करे है।

बहुरि इहा कोई कहे—तुम्हारी वुद्धि अल्प है तो ऐसे महान ग्रन्थकी बचनिका क्यो करी ? ताकू ऐसे कहनो जो इस काल मे मोते भी मदबुद्धि बहुत है तिनिके समझवे के अर्थि करी है यामैं सम्यग्दर्शन का दृढ करना प्रधानकरि वर्णन है ताते अल्पबुद्धी भी बाचे पढे अर्थ का धारण करे तो तिनिके जिनमतका श्रद्धान दृढ करेंगे, मेरे कछु ख्याति लाभ पूजाका तो प्रयोजन है नाही धर्मानुरागते यह बचनिका लिखी है, ताते बुद्धिमाननिके क्षमा ही करने योग्य है।

अर इस ग्रन्थ की गाथा की सख्या ऐसे है —प्रथम दर्शन पाहुड की गाथा 36। सूत्र पाहुड की गाथा 27। चारित्र पाहुड की गाथा 45। बोध पाहुड की गाथा 61। भाव पाहुड की गाथा 165। मोक्ष पाहुड को गाथा 106। लिंग पाहुड की गाथा 22। शोल पाहुड की गाथा 40। एव पाहुड आठ की गाथा की सख्या 502 है।

गाथाओ के नीचे सस्कृत छाया फिर उसका हिन्दी गद्य में अर्थ और फिर उसी का भावार्थ दिया गया है। वचनिका कही विस्तृत और कही सक्षिप्त है। मोक्ष पाहुड की 43 वी गाथा की वचनिका के रूप मे एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है .—

गाथा—जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तव सजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपय झायत्तो अप्पय सुद्ध ॥43॥

सस्कृत–य रत्नत्रययुक्तः करोति तप संयत स्वशक्या।
स प्राप्नोति परमपद ध्यायन् आत्मान शुद्धम् ॥43॥

अर्थ·—जो मुनि रत्नत्रयसयुक्त भया सता ,सयमी अपनी शक्ति सारु तप करे है सो शुद्ध आत्मा कू ध्यावता सता परमपद जो निर्वाण ताहि पावे है।

भावार्थ —जो मुनि सयमी पच महाव्रत पाच समिति तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार चारित्र सोही प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र सयम ताकू अगीकार करि अर पूर्वोक्त प्रकार निश्चय चारित्रकारि युक्त भया अपनी शक्तिसारू उपवास कायक्लेशादि बाह्य तप करे है सो मुनि अन्तरग तप जो ध्यान ताकरि शुद्ध आत्मा कू एकाग्र चितकरि ध्यावता सन्ता निर्वाण कू पावे है ॥43॥

मुनि श्रुतसागर के अतिरिक्त षट् पाहुड पर एक सस्कृत टीका और उपलब्ध होती है जिसका परिचय निम्न प्रकार है।

षट् पाहुड टीका–भूधर·—

षट् पाहुड पर भूधर कवि ने प्रतापसिंह के लिये गाथाओ पर 18 वी शताब्दो मे सस्कृत मे टब्बा टीका लिखी थो। उक्त टीका की एक गाथा देखिये—

णिग्गथाणिस्सगा णिम्माणा सोय रागणिद्दोसा।
णिम्ममणिरहकारा पवज्जा एरिसा भणिया ॥4॥

निग्रंथा परिग्रह रहिता स्त्री प्रमुख सग रहिता निर्म्मना अष्ट मद रहिता निराशा आशा रहिता रागनिर्दोष रहिता निर्म्मम निरहकारा अहकार ममता रहिता प्रवज्या ईदृशी भणिता प्रतिपाद्या मतिपाया प्रतिपादिता। उक्त टीका भूधर ने प्रतापसिंह के लिये लिखी थी।

षट् प्राभृत या ग्रन्थ को अक्षर अरथ बनाइ।
भूधर कीनो भावस्यो प्रतापसिघ सुखदाइ ॥2॥

इति श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचिते मोक्ष प्राभृतग्रन्थे अक्षरार्थो लिख्यते। ब्राह्मण चोखा लिखापित साहब कसीराम आत्मपठनार्थं। सवत 1711 वर्षे आषाढ मासे शुक्लपक्षे सोमवासरे सपूर्ण मिति। शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर ठोलियान जयपुर।

षट् प्राभृत भाषा :—

अष्ट पाहुड के अन्तिम दो पाहुडो को छोड कर श्रुतसागर सूरि ने जब से छह पाहुडो पर सस्कृत मे टीका लिखी तब से अष्ट पाहुड षट् पाहुड के नाम से विख्यात हो गया। इसलिये शास्त्र भण्डारो में दोनो ही नाम से पाण्डुलिपिया मिलती है। इसके अतिरिक्त देवीसिंह छाबडा ने तो षट् पाहुड को हिन्दी पद्य मे रूपान्तर कर दिया।

देवीसिंह छाबडा नरवर (राजस्थान) के निवासी थे। उनकी अब तक दो कृतिया उपलब्ध हो चुकी है उनमे एक उपदेश सिद्धान्त रत्नमाला की भाषा है जिसे उन्होने सवत् 1796 में समाप्त किया था। दूसरी कृति षट् पाहुड भाषा है जिसे उन्होने सवत् 1801 श्रावण शुक्ला 13 के शुभ दिन पूर्ण की थी। देवीसिंह के पिता का नाम जिन सेवक था तथा नवलसिह जिनके भाई थे। कवि ने अपनी बहिन का नाम तुलसा दिया है। कवि के समय में नरवर पर छत्रसिंह शासक थे जो कूर्मवश के थे। उनके राजकुमार का नाम गजसिंह था।

कवि ने गाथाओं का अर्थ सरल शब्दों में किया हैलेकिन गाथा के भाव को शब्दो मे पूरा उतारा है। हम यहां तीन उदाहरण प्रस्तुत कर रहें है :—

गाथा — जे दसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरितभट्टा य ।
एसे भट्टा वि भट्टा सेस पि जण विणासति ॥8॥

दोहा — ग्यान सु दरसन चरनसो, जे नर भ्रष्ट निकृष्ट ।
औरनि के व्रत को हरे, ते भ्रष्टनि तें भ्रष्ट ।

गाथा — जे दसणेसु भट्टा, पाए पाडति दसणधराणा ।
ते होति लुल्ल मूआ, बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥13॥

दोहा — द्रगधारी को द्रगविमुख पाडत आनो पाइ ।
लूला गू गा बोध विनु, हूहे भव भव आइ ॥13॥

देवीसिंह छाबडा की यह कृति अभी तक अप्रकाशित है तथा प्रकाशन योग्य हैं। ग्रन्थ की प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

कुन्दकुन्द आचारज भाषित, षट् पाहुड गाथा सोचारि ।
इकतालीस अधिक विंघ प्राकृत शब्द अर्थ सब धरे विचारि ।
ता उपरि भाषा दोहादिक चिंतामनि निज मति अनुसार ।
वरनी है सिव सुख की धरनी करनी भव्य भाव निरधार ॥

दोहा

जिनसेवक जिनदास सुत देवीसिंघ तसु नाम ।
गोत छाबडा प्रकट है खण्डेलवाल सुख धाम ॥10॥

कवित छद जिन पदनिमें चिंतामनि मम नाम ।
भाषे देवीसिंह सब रूढ नाम जग काम ॥11॥

नवलसिंघ भाई भलो जिन चरननि को दास ।
बाई तुलसा बहनि ने, कीनो श्रुत अभ्यास ॥12॥

जिन पूजा श्रुत दयामय, उभय पढत दिन रैन ।
भाषा षट् पाहुड सुने., धरे सु उर मे चैन ॥13॥

छत्रसीघ नर विख्याति राजत कूमर वंस ।
बुधिवान गजसिंघ सुत निज कुल को अवतस ।।14।।
या राजा के राज मैं वरन्यो भाषा ग्रन्थ ।
पढे सुने श्रधा सहित, तो पावे सिव पथ ।।15।।

सवत विक्रम राजगत, अठारह सौ एक ।
श्रावण सुकल त्रयोदसी पूरन कियो विवके ।।16।।

लिखि करि पूरन विधि कीयो, ग्रन्थ परम सुखदाय ।
दुतिया मारग असति की मंगल, मंगल दाय ।।17।।

इति श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्राकृत गाथा षट् पाहुड संपूर्ण ।। लिखंत ब्राह्मण केवलराम सवत 1846 वर्षे शाके 1711 प्रवर्त्तमाने ।।श्री।। गाम प्रणाया मध्ये लिखि छै ।।

रयणसार

रयणसार आचार्य कुन्दकुन्द का एक सरलतम ग्रन्थ है। यह अधिकारो मे विभक्त न होकर एक प्रवाह मे लिखा गया ग्रन्थ है जिसमें 167 गाथायें है। लेकिन डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री द्वारा सपादित ग्रन्थ मे रयणसार मूल में 155 गाथाये होना लिखा है तथा 12 गाथाओ को प्रक्षिप्त गाथाये माना है। जिनके सवंध मे उन्होने लिखा है कि वे गाथाये आचार्य कुन्दकुन्द की मूल रचना प्रतीत न होने के कारण अलग से दी जा रही है। प्राचीन प्रतियो मे इनमें अधिकतर गाथाये नही मिलती।[1] इसके पश्चात् सन् 1981 में रयणसार की श्री गोमटेश्वर सहस्राब्दी महामस्तकाभिषेक के शुभ अवसर पर वाचना प्रमुख स्वस्ति श्री चारूकीर्ति सपादक–बलभद्र जैन द्वारा प्रकाशित हुआ है जिसमें गाथाओ के प्रक्षिप्त मिलने का कोई सकेत नही किया है।[2] किन्तु सभी गाथाए आ० कुन्दकुन्द की ही हैं ऐसा समर्थन किया गया है।

1–रयणसार–सपादक डा० देवेन्द्रकुथार–पृष्ठ सं० 197, प्रकाशन वर्ष वी० नि० सम्वत् 2500

2–रयणसार–प्रकाशक श्रवणवेलगोल कर्नाटक सन् 1981

डा० ए एन उपाध्ये ने यद्यपि रयणसार को आ० कुन्दकुन्द की की रचना स्वीकार की है तथा उसका परिचय भी दिया है लेकिन कुछ गाथाओ पर कुन्दकुन्द की रचना होने का प्रश्न चिन्ह लगाया है तथा लिखा है कि विपय की पुनरूक्ति तथा गाथाओ का क्रम वद्ध नही होना, 6 गाथाओ पर अपभ्र श का प्रभाव, समाज सम्वन्धी सकेत आदि कुछ ऐसी बाते है जो कुन्दकुन्द जैसे दार्शनिक एव आध्यात्मिक आचार्य की रचना मानने मे हिचक पैदा करती है।[3] डा० उपाध्ये ने रयणसार मे 162 गाथाओ का होना माना है।

प० परमानन्द शास्त्री ने कहा है कि रयणसार में एक रूपता नही है–गाथाओ की क्रम सख्या भी वढो हुई है अनेक गाथाए प्रक्षिप्त है ऐसा स्थिति में जब तक जाच द्वारा मूल गाथाओ की सख्या निश्चित नही हों जाती और गण गच्छादि की सूचक प्रक्षिप्त गाथाओ का निर्णय नही हो जाता तव तक उसे कुन्दकुन्दाचार्य की कृति नही माना जा सकता।

इस प्रकार सभी आधुनिक विद्वान रयणसार को यद्यपि आचार्य कुन्दकुन्द की रचना स्वीकार तो करते है लेकिन उसमे कुछ गाथाये प्रक्षिप्त है वाद मे जोड दी गई है। ऐसी सभावना व्यक्त करते है। लेकिन गाथाओ के प्रक्षिप्तिकरण का प्रश्न ऐसे तो कभी हल नही होगा। इसका समाधान तो रयणसार की प्राचीनतम पाण्डुलिपियो के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात ही हल हो सकता है। राजस्थान के जैन शास्त्र भडारो मे भी रयणसार की पाण्डुलिपिया बहुत ही कम भण्डारो में मिलती हैं। सबसे प्राचीनतम पाण्डुलिपि सवत 1712 की है जो बू दी के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है। जयपुर के अन्य भण्डारो मे जितनी पाण्डुलिपिया है वे सभी सवत 1802 अथवा इसके बाद की है। इन पाण्डुलिपियो किन-किन मे कितनो-कितनी गाथायें नही मिलती है उन सबका अध्ययन डा० देवेन्द्र-कुमार जैन ने रयणसार की प्रस्तावना मे किया है। एक हिन्दी पद्यानुवाद वाली पाण्डुलिपि भी है जिसका हिन्दी पद्यानुवाद सवत 1768 मे किया गया था उसमे 154 पद्यो का पद्यानुवाद है तो अनिम दो पद्य स्वग के परिचय के है। इससे वह स्पष्ट है कि मूल ग्रन्थ मे 154/155 गाथाये रही होगो। शेष गाथाओ मे वैसा ही अन्तर है जैसे समयसार एव प्रवचनसार की अमृतचन्द एव जयसेन के टीका ग्र थो की गाथाओ में अन्तर है।

3–प्रवचन सार भूमिका–डा० उपाध्याये।

रयणसार का सार —

रयणसार का प्रारम्भ मंगलाचरण से हुआ है। इसके पश्चात् सम्यग्दृष्टि एव मिथ्यादृष्टि का लक्षण कहते हुये लिखा है जो भगवान सर्वज्ञदेव, गणधरो एवं पूर्वाचार्यो के वचनो को ज्यो का त्यो कहता है वह सम्यग्दृष्टि तथा इससे विपरीत आचरण करने वाला मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दर्शन–निश्चय सम्यग्दर्शन एव व्यवहार सम्यग्दर्शन के भेद से दो प्रकार का है। सम्यग्दृष्टि 44 दोषो से रहित सम्यग्दर्शन का पालन करता है। उसे ससार, शरीर और भोगो से आसक्ति नही होती अत॰ वह सदा सुखी रहता है। सम्यग्दर्शन के साथ बाह्य चरित्र भी मुक्ति का कारण है। श्रावक के कर्त्तव्यो मे दान और पूजा मुख्य है इसी प्रकार मुनि के कर्त्तव्यो मे ध्यान और अध्ययन मुख्य है। जो श्रावक दान और पूजा करता है, वह सम्यग्दृष्टि है। सुपात्र दान सब से श्रेष्ठ दान है। सुपात्र मुनि होता है। मुनि को आहार देकर ही श्रावक को भोजन करना चाहिये। मुनि की जिन-मुद्रा देख कर भक्ति पूर्वक उसे आहार देना चाहिये। सुपात्र दान से इस लोक और परलोक में सुख मिलता है और परम्परा से मोक्ष मिलता है। मुनियो को आहार देते समय मुनि की प्रकृति, ऋतु, आहार की सुपाच्यता स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव आदि बातो का विवेक रखना चाहिये, जिससे उनके सयम में बाधा न पडे।

भक्ति पूर्वक दिये गये दान का फल मोक्ष है और सासारिक प्रयोजन से दिये दान का फल ससार है। पूजा, प्रतिष्ठा दान आदि धार्मिक द्रव्य का जो भोग करता है, वह नरक गति में जाता है, विकलाग होता है और नाना प्रकार के दु ख भोगता है। जो पूजा दान आदि धर्मकार्यो में विघ्न डालता है, वह अनेक प्रकार का व्याधियो से पीडित रहता है। सम्यग्दर्शन और मिथ्यात्व के भेद को स्पष्ट करते हुये आचार्य श्री ने कहा है कि रत्नत्रय में सम्यग्दर्शन उत्कृष्ट है। धर्म और तत्व को सम्यग्दृष्टि ही पहचानता है। मिथ्यादृष्टि एक क्षण को भी आत्मस्वभाव का चिन्तन नही करता, निरन्तर पाप का ही चिन्तन करता रहता है। वह मोहासव पीकर हेय-उपादेय को भी नही जानता। किन्तु सम्यग्दृष्टि ज्ञान और वैराग्य मे समय बिताता है, जबकि मिथ्यादृष्टि आकाक्षा और आलस्य मे समय बिताता है। बहिरात्मा का लक्षण निम्न प्रकार किया है—बहिरात्मा बाह्य लिग

धारण करता है, व्रत, चारित्र आदि बाह्य चारित्र का भी कठोर पालन करता है किन्तु उसके जन्म मरण का नाश नही होता क्योंकि वह मिथ्यात्व नही छोडता।

आत्मज्ञान की आवश्यकता के सबध मे आचार्य कुन्दकुन्द कहते है कि अज्ञानी आत्मज्ञान के विना इन्द्रिय सुखो को ही सुख मानता है। आत्म रूचि और आत्मज्ञान के विना व्रत, तप, मुनि-लिंग सब व्यर्थ है। जव तक आत्मा को नही जाना, तभी तक दुःख है।

मुनि तत्व विचार मे लीन रहता है। धर्म कथा करता है, विकथाओ से दूर रहता है, शुभ ध्यान और अध्ययन में निरत रहता है और वह योगी होता है। किन्तु असयमी, सम्यक्त्व-हीन, आरम्भ-परिग्रह मे आसक्त, सघ-विरोधी, स्वच्छन्द-विहारी, ज्योतिप-वैधक और मन्त्र शास्त्र से आजीविका चलाने वाले, झाड-फू क करने वाले, लोक व्यवहार मे रत, आत्मप्रशसक ऐसे साधु सम्यक्त्व-रहित है। आत्मा को देहादि से भिन्न निजस्वरूप मानने वाला अन्तरात्मा होता है। अन्तरात्मा वन कर परमात्म पद की भावना करनी चाहिये। वहिरात्मा के वस्तुस्वरूप सवधी भाव दु ख के कारण होते है और अन्तरात्मा के वस्तु स्वरूप सबधी भाव मोक्ष और प्रशस्त पुण्य के कारण होते है। तीन शल्य आदि दोषो से रहित रत्नत्रयादि गुणो से युक्त, शुद्धोपयोगी और जिनलिंगधारी मुनि ही मोक्ष मार्ग का नेता होता है। ज्ञान से ध्यान, कर्मक्षय और मुक्ति प्राप्त होती है। ज्ञान से तप, सयम, होता है। सम्यक्त्व न होने से दु ख और ससार-परिभ्रमण होता है। सम्यक्त्व से सुख मिलता है सम्यक्त्व के बिना ज्ञान और क्रिया ससार के कारण है।

इस प्रकार रयणसार मे वहुत ही सरल शब्दो में जिस प्रकार मुनि एव श्रावक, सम्यक्त्व मिथ्यात्व, आत्मा, वहिरात्मा, अन्तरात्मा एव परमात्मा की व्याख्या की गई है वह कुन्दकुन्द जैसे आचार्य से ही सभव हो सकता था।

1–कुन्दकुन्द मुनि मूलकवि ग था प्राकृत कीन।
ता अनुक्रम भापा रच्यौ गुन प्रभावना कीन ॥155॥
सतरह मे अठसठि अधिक जेठ सुकुल ससि पूर।
गे पडित चातुर निरखि दोष करे सब दूर ॥156॥

रयणसार की प० जयचन्द छाबडा कृत हिन्दी टीका की एक मात्र पाण्डुलिपि अजमेर के शास्त्र भण्डार मैं होने का मैंने ग्रन्थ सूची के पचम भाग मे उल्लेख किया था लेकिन पाण्डुलिपि नही मिलने के कारण उसका विस्तृत परिचय नही दिया जा सका है।

एक बात और विचारणीय है कि जिस प्रकार समयसार, प्रवचन-सार पचास्तिकाय की प्राचीनतम पाण्डुलिपिया जैन ग्रंथ भण्डारो मे मिलती है वैसे रयणसार की पाण्डुलिपि क्यो नही मिलती। क्या इस ग्रन्थ का मध्य युग मे स्वाध्याय नही होता था अथवा ग्रन्थ होते हुये भी हमारे साधु वर्ग, विद्वत् वर्ग की उस ओर उपेक्षा थी। इस पर भी चिन्तन किया जाना चाहिये। वैसे तो लघु ग्रंथ एव सरल भाषा होने के कारण उसको पाण्डुलिपिया पर्याप्त सख्या मे मिलनी चाहिये थी।

वारसाणुपेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा)·—

आचार्य कुन्दकुन्द की यह लघु कृति है जिसमे वैराग्योत्पादक बारह भावनाओ का बहुत ही सुन्दर वर्णन हुआ है। इसमें 91 गाथाए है। लेकिन जयपुर के ठोलियो के मन्दिर की पाण्डुलिपि में 88 गाथाए है। अन्त की गाथा मे कुन्दकुन्द के नाम का उल्लेख हुआ है। बाहर भावनाए है— अध्रुवानुप्रेक्षा, अशरण, एकत्व, अन्यत्व, ससार, लोक, अशुचित्व, आस्रव, सवर, निर्जरा, धर्म और बोधि। कुन्दकुन्द स्वामी ने इन भावनाओ के नाम निम्न गाथा में गिनाया है .—

अध्रुवमसरणमेगत्त मण्णससार लोग मसुचित्त।
आसव-सवर-णिज्जर-धम्म वोहि च चिंतेज्जो ॥

इन भावनाओ के वर्णन करने का प्रमुख उद्देश्य श्रावको एव श्रमणो में वैराग्य भावना को सुदृढ करना है। आचार्य श्री ने अन्तिम गाथा में लिखा है कि निश्चय एव व्यहार नय से जो शुद्ध मन से इन भावनाओ को भाता है वह परम निर्वाण पद को प्राप्त करता है।[1]

1—इदि णिच्छय व्यवहार ज भणिय कुन्दकुन्द प्रणि णाहु।
जो भावइ सुद्धमणो, सो पावइ परम णिव्वाण ॥88॥
पाण्डुलिपि शास्त्र भण्डार दि० जैन मन्दिर जी ठोलियान।

भक्ति संग्रह

प्राकृत भाषा की आठ भक्तिया भी आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा रचित मानी जाती हैं। ये आठ भक्तिया निम्न प्रकार है —

1 सिद्ध भक्ति
2 श्रुत भिक्त
3 चारित्र भक्ति
4 योगि (अनगार) भक्ति
5 आचार्य भक्ति
6 निर्वाण भक्ति
7 पच गुरू भक्ति
8 थोस्सामि थदि(तीर्थङ्कर भक्ति)

इन भक्तियो का सक्षिप्त परिचय डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने निम्न प्रकार दिया है—[2]

1—सिद्ध-भक्ति —यह स्तुतिपरक ग्र थ है। 12 गाथाओ मे सिद्धो के गुण-भेद, सुख, स्थान, आकृति और सिद्धि मार्ग का निरूपण किया गया है। इस पर प्रभाचन्द्राचार्य की एक सस्कृत टीका है। इस टीका के अन्त में लिखा है कि सस्कृत की सब भक्तिया पूज्यपादस्वामी द्वारा विरचित है और प्राकृत की भक्तिया कुन्दकुन्द आचार्य द्वारा निर्मित है।

2—सुद भक्ति —इस भक्ति पाठ मे 11 गाथाए है। इसमें आचाराग, सूत्रकृताग आदि द्वादश अ गो का भेद प्रभेद सहित उल्लेख करते हुये उन्हे नमस्कार किया गया है। साथ ही 14 पूर्वो मे से प्रत्येक की वस्तु सख्या और प्रत्येक वस्तु के प्राभृतो की सख्या भी दी है।

3—चारित्त-भक्ति .—10 अनुष्टुप गाथा छन्द है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात नाम के चारित्रो, अहिसादि 28 मूलगुणो, दस धर्मो, त्रिगुप्तियो, सकलशीलो, परीषहो का जय और उत्तरगुणो का उल्लेख करते हुये मुक्ति सुख देने वाले चारित्र की भावना की गई है।

2—तीर्थङ्कर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा पृष्ठ 115–116

4—जोइ भक्ति :—23 गाथाओ मे योगियों की अनेक अवस्थाओं, ऋद्धियों, सिद्धियो एव गुणो के साथ उन्हे नमस्कार किया गया है।

5—आइरिय भक्ति —इसमे 10 गाथाए है और इनमें आचार्यो के उत्तम गुणो का उल्लेख करते हुये उन्हे नमस्कार किया है।

6—णिव्वाण भक्ति पाठ में 27 गाथाए है। इनमें निर्वाण का स्वरूप एव निर्वाण प्राप्त तीर्थङ्करो की स्तुति की गई है।

7—पचगुरू भक्ति .—इस भक्ति पाठ में सात पद्य है। प्रारम्भिक पाच पद्यो में क्रमश· अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाच परमेष्ठियो का स्तवन छठे पद्य मे स्तवन का फल अकित है। सप्तम पद्य मे इन पाच परमेष्ठियो का अभिधान पच नमस्कार में किया है।

8—थोस्सामि थुदि (तित्थयर-भक्ति)-"थोस्सामि" पद से आरम्भ होने वाली अष्ट गाथात्मक स्तुति है। इसे तीर्थङ्कर भक्ति भी कहा गया हैं। इस स्तुति पाठ मे वृषभादि वर्धमान पर्यन्त चतुर्विशति तीर्थङ्करों की उनके नामोल्लेख पूर्वक वन्दना की गई है और तीर्थङ्करो के लिए जिन, जिनवर, जिनेन्द्र, केवली, अनन्तजिन, लोकहित, धर्मतीर्थङ्कर, विधूतरजोमल, लोकोद्योतकर आदि विशेषणो का प्रयोग किया गया है। अन्त में समाधि, बोधि और सिद्धि की प्रार्थना की गयी है।

इस भक्ति पाठ के कतिषय पद्य श्वेताम्बर सम्प्रदाय के पद्यो के समान हैं। और कुछ भिन्न है। यथा—

लोयस्सुज्जोययरे धम्म-तित्थंकरे जिणें वंदे।
अरहते कित्तिस्से चउवीस चेव केवलिणे ॥–दिगम्बर पाठ

लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे।
अरहते कितइस्सं चउवोसं पि केवली ॥–श्वेताम्बर पाठ

इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द अपूर्व प्रतिभा के धनी और शास्त्र-पारगत विद्वान है। इन्होने पचास्तिकाय और प्रवचनसार में आध्यात्मिक दृष्टि के साथ शास्त्रीय दृष्टि को भी प्रश्रय दिया है। अतएव इन दोनों ग्रंथो में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयो का भी वर्णन प्राप्त होता है।

सम्यक्दर्शन के विपयभूत जीवादि पदार्थो का विवेचन करने के लिये शास्त्रीय दृष्टि को अ गीकृत किये विना कार्य नही चल सकता अतएव द्रव्यार्थिक नयसे जहा जीव के नित्य-अपरिणामी स्वभाव का वर्णन किया जाता है वहा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से जीव के अनित्य-परिणामी स्वभाव का भी वर्णन रहता है। यो तो द्रव्य-गुण और पर्यायो का एक अखण्ड पिण्ड है' तो भी उनका अस्तित्व प्रकट करने के लिये भेद को स्वीकार किया जाता है।

थिरूकुरल

थिरूकुरल कन्नड भाषा का ग्रंथ हैं। यह जैन रचना है इसमे भी किसी को सदेह नही है। लेकिन इसकी आचार्य कुन्दकुन्द की रचना मानने में वर्तमान विद्वानो के दो मत है। स्व० प्रो० चक्रवर्ती ने इस दिशा में कुछ ऊहापोह कर के जो खोज की है वह अनुकरणीय है। अधिक सभावना यही है कि यह कृति आचार्य कुन्दकुन्द की ही है।[1]

मूलाचार

प्राकृत भाषा में निबद्ध मूलचार आचार शास्त्र का ग्र थ है। यह ग्रंथ समाज में पर्याप्त प्रामाणिकता के साथ माना जाता है। जब कभी मुनि आचार के बारे में कोई शका होती है तो मूलाचार में इस विषय में क्या लिखा है यह देखा जाता है। मूलाचार के कर्ता के सबध मे विद्वानो के दो मत है।

एक मत तो इसे आचार्य वट्टकेर की रचना मानता हैं। इसका प्रमुख कारण है कि मूलाचार की प्रशस्तियो मे वट्टकेराचार्य का नाम दिया हुआ है और स्वयं ग्रंथ में वट्टकेर आचार्य कुन्दकुन्द हैं इसका कोई उल्लेख नही हैं। मूलाचार के सस्कृत टीकाकार वसुनन्दि आचार्य ने ग्र थ-कर्ता के रूप मे वट्टकेराचार्य, वट्टकेर्याचार्य और वट्टरकाचार्य का नामोल्लेख किया हैं।[2] ग्रंथकर्ता वट्टकेराचार्य के व्यक्तित्व, कृतित्व, स्थान

1—जैन धर्म का प्राचीन इतिहास—प० परमानन्द शास्त्री–पृष्ठ स० 83 भाग–2

2—शुभ परिणाम वितधच्छी वट्टकेराचार्य प्रथमतर तावन्मूलगुणाधिकार प्रतिपादनार्थ मगलपूर्विका प्रतिज्ञा विधत्ते .. पृष्ठ स० 2

समयादि के विषय में स्वय मूलाचार में, वसुनन्दिकृत आचार वृत्ति में अथवा अन्यत्र कही कोई ज्ञातव्य प्राप्त नही होते इसलिये यह कैसे कहा जा सकता है कि कुन्दकुन्द ही वट्टकेर है।

दूसरे मत के अनुसार :—मूलाचार के दूसरे टीकाकार है श्री मेघचन्द्राचार्य। इन्होने मूलाचार की मुनिजन चिन्तामणि नाम से कन्नड भाषा में टीका लिखी है। इस टीका का सम्पादन प० जिनदास फडकुले ने किया है। उसमें यह मूलाचार ग्र थ श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित है ऐसा प्रति अध्याय की समाप्ति में लिखा है तथा प्रारम्भ में एक श्लोक एवं गद्य में भी दिया है। उक्त गद्य से मूलाचार कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा रचित है ऐसा प्रतीत होता है।

आर्यिका ज्ञानमती जी माताजी ने मूलाचार कृति की सिद्धान्तचक्रवर्ति वसुनन्दि कृत आचारवृत्ति सहित हिन्दी टीका की है। इसके लिये एक ठोस प्रमाण यह भी है कि उन्होने द्वादशानुप्रेक्षा के नाम से एक स्वतंत्र रचना की है। मूलाचार में भी द्वादशानुप्रेक्षाओ का वर्णन आया है प्रारम्भ की दोनो जगह समान है।[1]......................इस प्रकार से भी यह मूलाचार श्री कुन्दकुन्द कृत है यह बात पुष्ट होती है।[2] इसके बाद भी आर्यिकारत्न माताजी ने विभिन्न प्रमाणो के आधार पर यही कहा है कि मूलाचार कुन्दकुन्ददेव की कृति है और श्री कुन्दकुन्ददेव का ही दूसरा नाम वट्टकेराचार्य है यह बात सिद्ध होती है।[3]

मूलाचार का परिचय —

1—मूलगुणाधिकार —मूलाचार मे मुनि धर्म का वर्णन किया गया है। इसमे 12 अधिकार है। सर्व प्रथम आचार्य कुन्दकुन्द ने मूलगुणो में विशुद्ध सभी सयतो की वंदना करके लोक एव परलोक के लिये हितकर मूलगुणो का वर्णन करने का सकल्प किया है। इसके पश्चात 28 मूलगुणो[4] के नामो को गिनाया है और फिर विस्तार से सभी मूल-

---

1—सिद्धे णमसिदूण य झाणुत्तमखविय दीहससारे।
दह दह दो दो य जिणे दह दो अणुपेहणा वुच्छ ॥ मू० अ० 8

2—मूलाचार-पूर्वार्द्ध टीकानुवाद–आर्यिकारत्न ज्ञानमतीजी आद्य उपोदघात पृष्ठ–32

3—वही, पृष्ठ स० 36

4—पाच महाव्रत, पाच समिति, पाच इन्द्रियो का निरोध, छह आवश्यक, लोच, आचेलक्य, आस्नान, अदन्तधावन, स्थिति भोजन और एक भक्त

गुणो का वर्णन किया गया है। एक-एक मूलगुण का एक गाथा में स्पष्ट स्वरूप बतलाया गया है। इन मूलगुणो से आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्राप्त होता है और यह मूलाचार शास्त्र उसके लिये साधन है।

2—बृहद् प्रत्याख्यान-सस्तरस्तवाधिकार–इस अधिकार मे पाप योग के जितने भी कार्य है उनके त्याग करने का उपदेश दिया गया है तथा प्रतिक्रमण के समय सभी प्रकार के पापो की निन्दा करने के लिये कहा गया है। सात भय, आठ मद, चार सज्ञा, तीन गारव तेतीस आसादना, राग और द्वेष इन सब की आलोचना सुनने योग्य वे ही आचार्य है जो ज्ञान दर्शन, तप और चारित्र इन चारो में अविचल है। तीन प्रकार के मरण बताये गये है बाल मरण, बाल पडित मरण तीसरा पडित मरण है। इसके पश्चात कहा गया है कि मरणकाल मे विराना हो जाने पर कन्दर्प, आभियोग्य, किल्विष स्वमोह और आसुरी ये देव दुर्गतिया होती है इसके पश्चात ये गतिया किन-किन कारणो से मिलती है इस पर प्रकाश डाला गया है। ससार के भोगो की भोगते रहने पर भी कभी इच्छा की पूर्ति नही होती, किस प्रकार तथा किन भावो के साथ मरण करना चाहिये तथा अर्हन्त, सिद्ध का शरण कहते हुये मरण करना उत्तम है। अपने आपको ज्ञान शरण है, दर्शन शरण है, चारित्र शरण है, तपश्चरण शरण है सयम शरण है तथा भगवान महावीर शरण है। धीर एव सयमी वन कर मृत्यु को अ गीकार करे तथा अन्त में भगवान महावीर मुझे वोधि प्रदान करे ऐसा चिन्तन करता हुआ मृत्यु को अ गीकार करें।

3—सक्षेप प्रत्याख्यानाधिकार —

जैसा कि इसका नाम है यह छोटा अधिकार है जिसमें 14 गाथाये हैं। मरण प्राप्त करता हुआ साधु चिन्तन करे कि वह सम्पूर्ण प्राणि हिंसा को, असत्य वचन को, सम्पूर्ण अदत्त ग्रहण, मैथुन तथा परिग्रह को वह छोडता है। सर्व प्रकार के आहार, संज्ञाओ को छोडता है। पेय पदार्थ को छोड़कर सम्पूर्ण आहार विधि का त्याग करें। वह चिन्तन करे कि मरण के समान कोई भयकारी नही और जन्म के समान कोई दु ख नही। अन्त में दस मुण्डनो के नाम गिनाये है–पाच इन्द्रिय मुन्डन, वचन मुन्डन से सहित हस्त पाद और मनोमुन्डन। मुन्डन का अर्थ होता है खडन करना, वश मे करना।

4—सामाचाराधिकार —

सामाचार का अर्थ है समता समाचार, सम्यक् आचार अथवा सम आचार या सभी का समान आकार सम्यक आचार ही सामाचार है औधिक और पद-विभागिक के भेद से समाचार दो प्रकार का है। इच्छाकार, मिथ्याकार, तथाकार आसिका, निषेधिका, आपृच्छा, प्रतिपृच्छा, छन्दन, सनिमन्त्रणा और उपसयत् ये दस भेद औधिक समाचार के है। श्रमणगण सूर्योदय से लेकर सम्पूर्ण अहोरात्र निरन्तर जो आचरण करते है ऐसा यह पदविभागी समाचार है।

इस अधिकार में एकल बिहारी मुनि कौन हो सकता इसका भी वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त एकल बिहारी साधु के दोषो का भी व्याख्यान किया गया है। साधु को किस प्रकार साधु सव में प्रवेश करना चाहिए। योग्य साधु को आचार्य आश्रय देते है और अयोग्य साधु का परिहार करते हैं। जो आचार्य परिहार योग्य साधु को बिना छेदोपस्थापना के सघ में रख लेते है वे आचार्य भी छद के योग्य होते है। मुनि को अपने अपराध की शुद्धि उसी सघ मे करनी चाहिये जिस सघ में वह रहता है। इसके आगे आर्यिकाओ की चर्या के बारे मे वणन किया गया है।

5—पंचाचाराधिकार :—

इस अधिकार मे दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तप आचार, और वीर्याचार इन पाच आचारो का बहुत ही अच्छा वर्णन किया गया है। इसके पश्चात जीव पदार्थ का भेदोपभेद लक्षण बताया गया है। अजीव पदार्थो के वर्णन के पश्चात् कहा है कि सम्यक्त्व से, श्रुतज्ञान से, विपरीत-प।रणाम से और कषायो के निग्रहरूप गुणो से जो परिणत है वह पुण्य है और उसके विपरीत पाप है। इस अधिकार में आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष पदार्थ का वर्णन के साथ सम्यग्दर्शन के आठ अ गो का वर्णन किया गया है। साधुओ एव आर्यिकाओ की स्वाध्याय कब करना चाहिये तथा अस्वाध्याय काल कौनसा है इसका भी स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके पश्चात् बारहव्रतो, बाह्य एव आभ्यतर तपो एव चार प्रकार के ध्यान का विशद वर्णन मिलता है।

6—पिंड शुद्धि अधिकार .—

इस अधिकार में उद्गम, उत्पादन, एषणा, सयोजना, प्रमाण,

अ'गार, धूम और कारण इन आठ प्रकार की पिण्ड शुद्धि का विशद वर्णन किया गया है। इन सबके भेद एव उपभेदो का वर्णन करके आचार्य कुन्द-कुन्द ने पिण्ड शुद्धि का अर्थ स्पष्ट कर दिया है। मुनि ज्ञान उद्गम के 16, उत्पादन के 16, एषणा के 10 इस प्रकार 42 तथा सयोजना, प्रमाण, अ गार और धूम ये मिला कर 46 दोषो को टाल कर आहार लेते है। किन-किन कारणो से आहार लेते है और किन-किन कारणो से आहार ग्रहण नही करते है इन सबका विशद वर्णन किया गया है।

7—षडावश्यकाधिकार—इस अधिकार में सर्व प्रथम पच परेष्ठियो को नमस्कार करके सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्या-ख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यको की क्रियाओ का विस्तार से वर्णन किया गया है।

8—द्वादशानुप्रेक्षाधिकार—इसमें बारह अनुप्रेक्षाओं का विशद वणन किया गया है।

9—अनगाराधिकार—इस अधिकार में मुनियो की उत्कृष्ट चर्या का वर्णन किया गया ह। लिंग, व्रत, वसति, विहार, भिक्षा, ज्ञान, शरीर, सस्कार त्याग, वाक्य, तप और ध्यान सम्बन्धी दश शुद्धियो का विवेचन किया गया है तथा अभ्रावकाश आदि योगो का भी वर्णन है।

10–समयसाराधिकार—इसमे चारित्र शुद्धि के हेतुओ का कथन है। चार प्रकार के लिग और दश प्रकार के स्थिति कल्प का भी अच्छा विवेचन है। ये है अचेलकत्व, अनौद्देशिक, शय्यागृह त्याग, राजपिंड त्याग, कृतकर्म, व्रत, ज्येष्ठता, प्रतिक्रमण, मासस्थितिकल्प और पर्यवस्थिति कल्प।

11–शील गुणाधिकार· –इसमे 18 हजार शील के भेदो का तथा 84 लाख उत्तर गुणो का कथन किया गया है।

12–पर्याप्त्याधिकार—जीव की छह पर्याप्तियो के साथ ससारी जीव के अनेक भेद प्रभेदो का कथन किया है क्योकि जीवो के नाना भेदो को जानकर ही उनकी रक्षा की जा सकती है।

इस प्रकार मूलाचार एक विशाल ग्रन्थ है जिसमें साधु जीवन का विशद वणन मिलता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने इसमे साधु जीवन का खुला

वर्णन कर के उनका मार्ग निर्देशन किया गया है। दिगम्बरत्व की रक्षा के लिये कौन कौन से उपाय आवश्यक है तथा वह किस प्रकार तपश्चरण के द्वारा निर्वाण प्राप्त कर सकता है इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों की प्रमुख पाण्डुलिपियां

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थो की सैकडों पाण्डुलिपिया राजस्थान, देहली एव अन्य प्रदेशो के शास्त्र भडारो में उपलब्ध होती है। ये पाण्डुलिपिया ग्रन्थ सपादन एव पाठ भेदो के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसलिये यहा कुछ प्रमुख पाण्डुलिपियो का सामान्य परिचय उपस्थित किया जा रहा है।

पंचास्तिकाय

1—पचास्तिकाय–टीकाकार–अमृतचन्द्राचार्य। पत्र स० 148, वेष्टन सख्या 148 लेखनकाल–सवत 1718 चैत्र सुदी 11 प्राप्ति स्थान–भट्टारकीय दिगम्बर जैन मदिर अजमेर। पाण्डे हेमराज की हिन्दी टीका भी है।

2—पचास्तिकाय–टीकाकार–अमृतचन्द्राचार्य, पत्र स० 46। वेष्टन सख्या 28, लेखनकाल–सवत 1513 आसोज बुदी 7, प्राप्ति [स्थान–दि० जैन मन्दिर सभवनाथ, उदयपुर।

3—पचास्तिकाय-टीकाकार–अमृतचन्द्राचार्य, पत्र सख्या 50 वेष्टन स० 28, लेखनकाल स० 1573 माघ सुदी 13, प्राप्ति स्थान–दि० जैन मंदिर लश्कर, जयपुर।

4—पंचास्तिकाय–टीकाकार, जयसेनाचार्य, पत्र स० 188 ले० का० सवत 1329, चैत्र बुदी 10, प्राप्ति स्थान–दि० जैन बड़ा मदिर तेरह पंथियान, जयपुर।

5—पचास्तिकाय–भाषा–हीरानद, पत्र स० 83। लिपिकाल स० 1899 प्राप्ति स्थान वही।

6—पचास्तिकाय प्रदीप–प्रभाचन्द्र, पत्र स० 22, वे. सं 329, प्राप्ति स्थान–दि० जैन मदिर बधीचन्द, जयपुर।

7—पंचास्तिकाय भापा-बुधजन, पत्र स० 62, रचनाकाल-स० 1892, वेष्टन स० प्राप्ति स्थान, वही ।

8—पचास्तिकाय-आ० कुन्दकुन्द । पत्र स० 53, ले० का० स० 1802, प्राप्ति स्थान-वही, वे० स० 116 ।

9—पचास्तिकाय-टोकाकार आचार्य अमृतचन्द्र । ले०का० स० 1626 पत्र स० 199, प्राप्ति स्थान-आमेर शास्त्र भडार ।

10-पचास्तिकाय-अमृचन्द्राचार्य, पत्र स० 77, ले० का० सं० 1698 वे० स० 166, प्राप्ति स्थान-दि० जैन मदिर दीवान जी कामा

समयसार

1—समयसार कलश-आचार्य कुन्दकुन्द कलशकार-आ० अमृतचन्द्र । पत्र स० 25, ले० का स० 1601, वेष्टन स०, 164, प्राप्ति स्थान-भट्टारकीय दि० जैन मदिर अजमेर ।

2—प्रति स० 2, पत्र स 27, ले० का० स० 1650, वे० स० 39, प्राप्ति स्थान-दि० जैन मदिर लश्कर, जयपुर ।

3—प्रति स० 3, पत्र स० 15, ले० का० स० 1634, वे० स० 344, दि० जैन मदिर अभिनदन स्वामी बून्दी ।

—समयसार टीका-अमृतचन्द्राचार्य, पत्र स० 191, ले० काल स० 1463, मगसिर बुदी 13 (आत्मख्याति) वे० स० 18, प्राप्ति स्थान-भट्टारकीय दि० जैन मदिर अजमेर ।

5—प्रति सख्या 2, पत्र स० 143, ले० काल सं० 1658, वे० सँ० 165 प्राप्ति स्थान-दि० जैन मदिर दीवान जी कामा ।

6—प्रति स० 3, पत्र स० 129, ले० काल स० 1575, वेष्टन स० 164 प्राप्ति स्थान-वही ।

7—समयसार टीका-जयसेनाचाय, तात्पर्यवृत्ति सहित, पत्र स० 114 लिपि स० 1801, प्राप्ति स्थान-आमेर शास्त्र भडार, जयपुर।

8—प्रति स० 2, पत्र संख्या 133-151, ले० का० स० 1632, वेष्टन स० 1861, प्राप्ति स्थान-दिगम्बर जैन बडा तेरह पथीयान मदिर, जयपुर ।

9—समयसार टीका—भ शुभचन्द्र टीका नाम-अध्यात्मतरगिणी। पत्र स 130, र का स 1573, वेष्टन स 28, प्राप्ति स्थान दि जैन मदिन दीवान जी कामा।

10-समयसार टीका—भ देवेन्द्रकीर्ति पत्र सख्या '5, र, का स० 1788, ले का स० 1804, वेष्टन सख्या 318, प्राप्ति स्थान दि० जैन मदिर अभिनन्दन स्वामी बू दी ।

11-समयसार कलश टीका—नित्यविजय, पत्र सख्या 132, वेष्टन सख्या 132, प्राप्ति स्थान दि० जैन मदिर कामा (राज)

12-समयसार टब्बा टीका—राजमल्ल, पत्र सख्या 299, ले का सवत 1743, वेष्टन सख्या 764, प्राप्ति स्थान दि० जैन मदिर बधीचन्द जी जयपुर ।

13-प्रति सख्या 2, पत्र सख्या ‿75, ले काल सवत 1758, वेष्टन सख्या 765, प्राप्ति स्थान वही ।

14-समयसार वचनिका—प० दौलतराम कासलीवाल, पत्र स० 132 ले. का. सवत 1902, प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन मदिर भाई जी का प्रतापगढ ।

15 समयसार भाषा—प जयचन्द जी छाबडा, पत्र स. 320, रचना काल सवत 1864 ले का सवत 1906, वेष्टन स 720, प्राप्ति स्थान दि० जैन बड़ा मदिर तेरहपथियान, जयपुर ।

16-प्रनि स 1, पत्र सख्या 360, ले का सवत 1866, पोप बुदी-1, प्राप्ति स्थान, दिगम्बर जैन मदिर तेरहपथी दौसा (राज)

17-समयसार नाटक—बनारसीदास, पत्र स. 76, रचनाकाल स 1695, ले का सं 1703, वेष्टन स 767, प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन मदिर बधीचन्द जी, जयपुर ।

18-प्रति स 2, पत्र स 97, ले का. 1838, वेष्टन स 409, प्राप्ति स्थान दि जैन मदिर पोटोदियान, जयपुर ।

19–समयसार भाषा टीका—सदासुख कासलीवाल पत्र स 184। रचनाकाल स. 1914, लेखनकाल स 1930, वेष्टन सख्या 746, प्राप्ति स्थान–बाबा दुलीचद भडार, जयपुर।

20–समयार वृत्ति—प्रभाचन्द्र, भाषा–सस्कृत, ले का. स 1602 वेष्टन स 1181, प्राप्ति स्थान–भटारकीय दि. जैन मदिर, अजमेर।

प्रवचनसार

1—प्रवचनसार—आचार्य कुन्दकुन्द, पत्र स 20, ले का स 1866, वेष्टन स 238, प्राप्ति स्थान दि जैन नया मदिर बैराठियो का जयपुर।

2—प्रति सख्या 2, पत्र सख्या 22, ले. का 1867, वेष्टन स 247, प्राप्ति स्थान वही।

3- प्रवचनसार टीका–अमृतन्द्राचार्य, पत्र स 143, लेखनकाल स 1590, प्राप्ति स्थान अग्रवाल दि जैन मदिर उदयपुर।

4—प्रति सख्या–2, पत्र सख्या–117, ले का स 1464, वेष्टन सख्या 1625, प्राप्ति स्थान भटारकीय दि जैन मदिर, अजमेर।

5—प्रति सख्या-3, पत्र स 127, ले का स 1744, दि. जैन तेरहपथी मदिर, मालपुरा (टौक)

6—प्रवचनसार टीका—प प्रभाचन्द्र, पत्र स 50, ले काल संवत 1605, प्राप्ति स्थान–दिगम्बर जेन मदिर नेमिनाथ–टोडारायसिंह

7—प्रति सख्या–2, पत्र स 77, लेखनकाल–सवत 1577, प्राप्ति स्थान आमेर शास्त्र भडार, जयपुर

8—प्रवचनसार भाषा—पांडे हेमराज, पत्र संख्या 110, रचनाकाल सवत 1709, लेखनकाल सवत 1711, गद्य पद्य टीका हित है। वेष्टन स 727, प्राप्ति स्थान दि जैन मदिर बधीचन्द, जयपुर।

9—प्रति सख्या–2 पत्र सख्या 91, ले का 1885, वेष्टन सख्या 191, प्राप्ति स्थान दि जैन बीस पथी मदिर दौसा।

10–प्रवचनसार भाषा—हमराज गोदीका, पत्र स 47, ले का सवत 1746, वेष्टन स 1188, प्राप्ति स्थान दि. जैन बडा मदिर तेरह पथियान, जयपुर।

11–प्रति सख्या-2, पत्र सख्या-91, ले. का. सवत 1885, भादवा बुदी 9, वेष्टन स. 191, प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन बी पंथ मदिर दौसा, राज.

12–प्रवचनसार भाषा—जोधराज गोदीका, पत्र स. 38, र का सवत 1726, ले. का. सं 1730, वेष्टन सं 644, प्राप्ति स्थान, दिगम्बर जेन नया मन्दिर बैराठियान, जयपुर।

13–प्रति सख्या-2, पत्र सं 72, लिपि संवत 1846, प्राप्ति स्थान ग्रामेर शास्त्र भडार, जयपुर।

14–प्रवचनसार भाषा—वृन्दावनदास, पत्र स 217, रचनाकला सं. 1905, लेखनकाल सवत 1933, वेष्टन स. 511, प्राप्ति स्थान बाबा दुलीचन्द शास्त्र भण्डार, जयपुर।

15–प्रति सख्या-2, पत्र सं 153, लेखनकाल सं 1927, वेष्टन सं 726, प्राप्ति स्थान दि जैन मन्दिर बधीचन्द, जयपुर।

16–प्रवचनसार भाषा—देवीदास, पत्र सं. 105, रचनाकाल संवत 1824, लेखनकाल सं. 1828, वेष्टन स. 1195, प्राप्ति स्थान दि जैन बड़ा मन्दिर तेरहपथियान, जयपुर।

17–प्रवचनसार टीका—तात्पर्यवृत्ति, ग्रा. जिनसेन, पत्र स 186, लेखनकाल सवत 1909, प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन सरस्वती भण्डार नया मन्दिर धर्मपुरा, देहली।

नियमसार

1–नियमसार–ग्राचार्य कुन्दकुन्द, पत्र सं. 12, लेखनकाल संवत 1778, माह बुदी-10, वेष्टन स 909 प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथी जयपुर।

2–नियमसार टीका—पद्य प्रभमलधारिदेव, पत्र संस्या 85, लिपि संवत 1837, वेष्टन स. 588, ग्रामेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

3–प्रति सं. 2, पत्र स 127, लेखनकाल सं. 1785, वेष्टन सं. 318, प्राप्ति स्थान श्री दि. जैन मन्दिर ठोलियान, जयपुर।

4–प्रति सं. 3, पत्र स. 164, लेखनकाल सं. 1735, प्राप्ति स्थान भट्टारकीय दि जन मन्दिर, ग्रजमेर।

5–प्रति स 4, पत्र स 222, लेखनकाल स 1838, प्राप्ति स्थान बाबा दुलीचन्द शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

6–प्रति स 5, पत्र स 83, लेखनकाल स 1795, वेष्टन स 12, प्राप्ति स्थान दि जैन मन्दिर जी दीवान जी, कामा ।

अष्ट पाहुड/षट् पाहुड

पाहुड आठ है । इसलिये या तो वे अष्ट पाहुड के नाम से मिलते हैं या फिर पट् पाहुड के नाम से । एक-एक पाहुड की पाण्डुलिपियाँ बहुत कम मिलती है । इसलिये यहा अष्ट पाहुड अथवा पट् पाहुड की पाण्डुलिपियो का ही उल्लेख केया जा रहा है ।

1–अष्ट पाहुड—आचार्य कुन्दकुन्द, पत्र स 37, लेखनकाल स 1763, पौष बुदी 11, वेष्टन न 33, प्राप्ति स्थान दि जैन बडा मन्दिर, तेरहपथी जयपुर ।

प्रति स 2, पत्र स 44, लेखनकाल स. 1812, प्राप्ति स्थान वही ।

2–अष्ट पाहुड भाषा—प जयचन्द जी छाबडा, भाषाकाल स 1867, ले का स 1881, वेष्टन स 37, प्राप्ति स्थान वही ।

3-प्रति सख्या 2, पत्र 162, ले का स 1867, वेष्टन स 39 प्राप्ति स्थान वही । यह पाण्डुलिपि स्वय प जयचद जी छाबडा द्वारा लिखी हुई है ।

4–प्रति सख्या 3, पत्र 430, वेष्टन सख्या 13, प्राप्ति स्थान बाबा दुलीचन्द शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

5–प्रति सख्या 4, पत्र सख्या 262, वेष्टन सख्या 21, प्राप्ति स्थान दि जैन मन्दिर करौली ।

6–षट् पाहुड आचार्य कुन्दकुन्द, पत्र सख्या 22, ले काल सवत 1797, वेस्टन स 240, प्राप्ति स्थान दि जैन पचायती मदिर भरतपुर ।

7–प्रति सख्या 2, पत्र मख्या 28, ले. का सं 1723, प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन खण्डेलवाल मन्दिर उदयपुर।

8–प्रति मख्या 3, प त्र स 28, ले का सं. 1816, वेष्टन संख्या 45, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर भादवा।

9–प्रति सख्या 4, पत्र सख्या 23, ले. काल सं. 1712, वेष्टन संख्या 159, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर दीवान जी कामा।

10–षट पाहुड टीका श्रुतसागर, भाषा सस्कृत, पत्र स. 152 लेखन काल सवत 1795, वेष्टन न 92। प्राप्ति स्थान दि जैन मदिर पार्श्वनाथ, जयपुर।

11–प्रति सख्या 2, पत्र सख्या 171, ले. का 1797, वेष्टन नम्बर 98, प्राप्ति स्थान दि जैन मन्दिर पार्श्वनाथ जयपुर।

12 षट पाहुड टीका भूधर, पत्र सं 62, भाषा सस्कृत, लेखनकाल सवत 1751, वेष्टन न 2 4, प्राप्ति स्थान दिगम्बर जैन मदिर ठोलियान जयपुर।

13–षट पाहुड टीका—देवीसिह छाबडा, भाषा हिन्दी पद्य, रचनाकाल सवत 1801, लिपिकाल सवत 1942, वेष्टन सख्या 315/226 प्राप्ति स्थान सम्भवनाथ दि. जैन मन्दिर उदयपुर।

14–प्रति सख्या 2, पत्र नं 27, ले. का. न. 1877, प्राप्ति स्थान पार्श्वनाथ दि. जैन मन्दिर, इन्दरगढ (कोटा)।

15–प्रति सख्या 3, पत्र स 39 ले का स. 1850, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर आदिनाथ।

16–षट पाहुड भाषा वचनिका—प. जयचन्द छाबड़ा, पत्र स. 193 भाषा हिन्दी (गद्य) रचनाकाल स 1867, ले. का स. 1894, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर दौसा (राज.)।

17–प्रति स. 2, पत्र स. 193, वेस्टन स. 78, प्राप्ति स्थान तेरहपथी दि. जैन मन्दिर, नेणवा (राज)।

रयणसार

1–रयणसार—पत्र स 9, ले का प्राप्ति स्थान शास्त्र भण्डार दि. जैन बडा मन्दिर तेरहपन्थी जयपुर। इस भण्डार में 4 पाण्डुलिपिया और है।

2–प्रति स 2, पत्र स. 10, ले का. 1883, वे स 946 प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर पाटोदियान, जयपुर।

3–प्रति स 3, पत्र सख्या 10, वेस्टन सख्या 1810 आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर।

मूलाचार

1–मूलाचार, रचनाकार का नाम—वट्टकेराचार्य दिया हुआ है। पत्र स 240, आ. वसुनदि की टीका है। टीकाकाल सवत 1605, प्राप्ति स्थान शास्त्र भण्डार दि. जैन मन्दिर बडा तेरहपथियान, जयपुर।

2–प्रति सख्या 2, पत्र सख्या 167, ले का.। प्राप्ति स्थान वही।

3–मूलाचार टीका—आचार्य वसुनदि। पत्र स 368, भाषा सस्कृत ले. का 1829, वेस्टन सख्या 275, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर पाटोदियान, जयपुर।

4–प्रति सख्या 2, पत्र सख्या 373, वे स 580, प्राप्ति स्थान बाबा दुलीचद शास्त्र भण्डार, पाटोदियान, जयपुर।

5–मूलाचार भाषा—ऋषभदास, निगोत्या, पत्र स 227 रचनाकाल सवत 1888, वेस्टन स 782, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर बधीचन्द जी जयपुर।

6–प्रति सख्या 2, पत्र सं. 323, वेस्टन स 22, 126 प्राप्ति स्थान दि. जैन पचायती मन्दिर अलवर ।

7–प्रति सख्या 3, पत्र स 494, ले. काल स. 1974, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर फतेहपुर (शेखावाटी) ।

बारस अणुपेहा

1–द्वादसानुप्रेक्षा—कुन्दकुन्दाचार्य, पत्र स 6, वे. स. 63, प्राप्ति स्थान दि. जैन मन्दिर लश्कर, जयपुर ।

2–प्रति सख्या 2, पत्र स 12, ले. काल स 1888, प्राप्ति स्थान वही ।

3–प्रति सख्या 3, पत्र स. 6, गाथा स 85, प्राप्ति स्थान आमेर शास्त्र भण्डार (जयपुर) ।

नामानुक्रमणिका

ग्रन्थानुक्रमणिका

नगरानुक्रमणिका

जाति एवं गोत्र अनुक्रमणिका

लेखक एवं सम्पादक का परिचय

नाम— कस्तूरचन्द कासलीवाल

जन्म स्थान—सैथल-तहसील दौसा, जिला जयपुर (राजस्थान)

जन्म तिथि—८ अगस्त १९२०, भाद्रपद सम्वत् १९७७

पिता— श्री गैंदीलाल जी। माता— श्रीमती गेंदाबाई

भाई— श्री चिरजीलाल जी (ज्येष्ठ भ्राता) वैद्य प्रभुदयाल जी भिषगाचार्य (कनिष्ठ भ्राता)। बहिन— श्रीमती गुलाब देवी

पत्नी— श्रीमती तारा देवी

पुत्र— निर्मल कुमार, नरेन्द्र कुमार

पुत्रिया— निर्मला, शशिकला एव सरोज

पौत्र पौत्री—अविनाश, आलोक, निधि, नेहा

शिक्षा— एम ए. (वर्ष १९४६ आगरा विश्वविद्यालय) शास्त्री (जयपुर)
पी-एच डी (राज विश्वविद्यालय-सन् १९६१)

विषय— Jain Grantha Bhandars in Rajasthan

प्रमुख गुरु— प. चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ

व्यवसाय— केन्द्रीय सेवा (सन् १९४९ से १९७८ तक)
साहित्यिक सेवा—सन् १९४७ से अद्यावधि

लेखन एव सम्पादन—

I १-५ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची (पाच भागो मे) (६) प्रशस्ति सग्रह, (७) प्रद्युम्न चरित, (८) जिणदत्त चरित, (९) हिन्दी पद सग्रह, (१०) राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एव कृतित्व, (११) महाकवि दौलतराम कासलीवाल—व्यक्तित्व एव कृतित्व, (12) चम्पा शतक, (१३) शाकम्भरी प्रदेश के विकास मे जैनो का योगदान, (१४) Jain Grantha Bhandars in Rajasthan, (१५) वीर शासन के प्रभावक आचार्य, (१६) महाकवि ब्रह्म रायमल—व्यक्तित्व एव कृतित्व, (१७) कविवर बूचराज एव उनके समकालीन कवि, (१८) भट्टारक रत्नकीर्ति एव कुमुदचन्द्र, (१९) आचार्य सोमकीर्त्ति एव ब्रह्म यशोधर, (२०) बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एव हेमराज, (२१) बाई अजीतमति एव उनके समकालीन कवि, (२२) मुलतान जैन समाज-इतिहास के आलोक मे, (२३) मुनि सभाचन्द एव उनका पद्मपुराण, खण्डेलवाल जैन समाज का वृहद् इतिहास (प्रथम खण्ड) ४० से भी अधिक ग्रन्थ।

जयपुर
~~II, —दस से अधिक अभिनन्दन ग्रन्थ~~, स्मृति ग्रन्थ एव स्मारिकाओ के सम्पादक के प्रमुख रूप मे सहयोग,

III नाटक–परित्यक्ता, लडकी, नयी दिशा, तपस्विनी, घर की लाज, हार जीत, प्रतिज्ञा आदि सभी मचित ।

IV २०० से भी अधिक लेख—विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं मे—Illustrated Weekly, कादम्बिनी, सप्तसिन्धु, परिषद् पत्रिका, सम्मेलन पत्रिका, राजस्थान पत्रिका, राष्ट्रदूत, नवभारत टाइम्स, वीरवाणी, सन्मतिवाणी, तीर्थंकर आदि ।

V सम्पादक– वीरवाणी (पाक्षिक) जयपुर, जैन सिद्धान्त भास्कर आरा (अर्द्ध वार्षिक)

VI सस्थापक—श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, महिला जाग्रति सघ,

VII. अध्यक्ष—राज जैन साहित्य परिषद्, ज्ञान विद्यालय, उपाध्यक्ष अ भा दि जैन विद्वद् परिषद् ।

VIII सम्मानित वीर निर्वाण भारती मेरठ, अ. विश्व जैन मिशन अलीगज, महिला जाग्रति सघ जयपुर, भ महावीर २५००वा परिनिर्वाण समिति, दि जैन समाज निवाई आदि ।

IX सक्रिय सदस्य—शास्त्री परिषद्, दि जैन महासभा आदि ।

X सन् १९६१ से लेकर सन् ८४ तक आरा, गयाजी, वाराणसी, नागपुर, अहमदाबाद, सागर, इन्दौर, उज्जैन, देहली, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर, पाली, ब्यावर, कोल्हापुर, यादवपुर, कलकत्ता, जबलपुर, कोटा, अजमेर बम्बई, सोलापुर, खेकडा मुजफ्फर नगर आदि नगरो मे आयोजित ८० से भी अधिक सेमिनारो एव सगोष्ठियो मे निबन्ध वाचन

XI साहित्यिक खोज शोध के अन्तर्गत अब तक सैकडो कृतियो एव उनके कवियो की प्रथम बार खोज,

XII २० से भी अधिक बार आकाशवाणी जयपुर एव देहली द्वारा दर्शन, साहित्य, इतिहास एव सस्कृति पर वार्ताओ का प्रसारण

XIII वर्तमान गतिविधि—जैन साहित्य की खोज एव शोध, समाज सेवा, शोधार्थियो को मार्ग निर्देशन आदि ।

—867, अमृत कलश, [illegible] नगर, किसान मार्ग, टोंक फाटक, जयपुर—15